विषय सूची

1.	पिन घाटी राष्ट्रीय उद्यान – एक अवलोकन	:	देवेन्द्र कुमार सिंह व सुशील कुमार सिंह	1
2.	सिक्किम में जंकेसी (Juncaceae)	:	गीतामणि छेत्री एवं टी. एम. हिनयूटा	5
3.	नामेरी राष्ट्रीय उद्यान की वनस्पति विविधता एवं इसका संरक्षण	:	शमीम सोफिका बेगम एवं टी. एम. हिनयूटा	7
4.	डोडीताल में वानस्पतिक सर्वेक्षण – एक अवलोकन	:	जे. आर शर्मा, दीपिका बिष्ट व बी. पी. उनियाल	9
5.	वैज्ञानिक अध्ययन में रंग की उपयोगिता	:	ए. बी. डी. सेलवम	13
6.	बायोइन्फार्मेटिक्स : नई संभावनाएं	:	डा. एस. एल. गुप्त	15
7.	नोकरेक जीवमण्डल–एक परिचय	:	एच. एस. देवनाथ एवं बसंत सिंह	17
8.	माल्दा जिला के जलाशयों में मखाना का पारिस्थितिकी अध्ययन एवं उपयोगिता	:	प्रतिभा गुप्ता एवं शिव कुमार	24
9.	खिरकंद एक औषधपयोगी पौधा	:	एम जे कोठारी,वी.पी.प्रसाद एवं पी. एस. एन. राव	27
10.	हमारी रंगीन वनस्पति सम्पदा	:	हरीश सिंह 'भुजवान'	28
11.	''अंडमान एवं निकोबार द्वीपों में भूकंप व सुनामी लहरों का वनस्पतियों पर प्रभाव''	:	श्रीमती जी एस लकडा एवं पी जी दिवाकर	31
12.	जैव उर्वरक : नील हरित शैवाल	:	आर. के. गुप्ता	35
13.	साइपेरस रोटुन्डस – एक खर पतवार के औषधीय गुण	:	मानस रंजन देवता एवं सुशील कुमार सिंह	37
14.	''टॉकसिंग'' सर्वेक्षण यात्रा – अविस्मरणीय अनुभव !	:	कुमार अम्बरीष	39
15.	च्यूर एक परोपकारी वृक्ष	:	नन्दलाल तिवारी	44
16.	रूद्राक्ष (भगवान शंकर की आँख)	:	नन्दलाल तिवारी	45

17. बरगद का पेड़	:	राजीव कुमार सिंह	46
18. वात हर पौधा पुदीना	:	कु रूपाली प्रशांत कुलकर्णी	49
19. पर्यावरण समाचार	:	संजीव कुमार	51
20. संरक्षण को बढावा देने वाले राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय दिवस	:	एस. एल. गुप्त	53
21. गंगा का भौतिक परिवेश	:	श्री भोलानाथ	55
22. बॉन्साई	:	कृष्णाशीष चौधरी एवं संजीव कुमार	56
23. समीक्षा	:	सुधांशु कुमार जैन	59

पिन घाटी राष्ट्रीय उद्यान – एक अवलोकन

देवेन्द्र कुमार सिंह व सुशील कुमार सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

पिन घाटी राष्ट्रीय उद्यान हिमाचल प्रदेश के शीत मरुस्थल क्षेत्र में स्थित है। शीत मरुस्थल में होने के कारण यह क्षेत्र विशिष्ट स्थान रखता है तथा यह भूगर्भ विज्ञानियों, जीवाश्म विज्ञानियों, वनस्पति विज्ञानियों, जीव विज्ञानियों तथा विदेशी पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र रहा है। यह उद्यान लाहौल-स्पिती जिले के स्पिती उपखण्ड, 31° 6 40 से 32° 2 20 तक उत्तरी अक्षांश एवं 77° 4 21 से 78° 6 19 तक पूर्वी देशांतर के बीच स्थित है। इसकी स्थापना हिमाचल प्रदेश सरकार के द्वारा जारी अधिसूचना क्रमांक Fts(B) F (7) 31/86 दिनांक 09. 01. 1987 के अन्तर्गत हुयी। इस राष्ट्रीय उद्यान का क्षेत्रफल 675 वर्ग किमी० कोर जोन में एवं 1150 वर्ग किमी० बफर जोन के रूप में है तथा समुद्र तल से उंचाई लगभग 3650–6632 मी० है। इसकी उत्तरी सीमा बड़ा शिगरी ग्लेशियर (6632 मी०) से आरम्भ होकर तत्पश्चात हंडुगमा पर्वतमाला से लेकर दरिया राटॉग के शिखर तक एक ओर खामिंगर गड्ड और किदुलचो व दूसरी ओर राटॉग दरिया के जलग्रहण क्षेत्रों को पृथक करने वाली मेंड एवं किदुलचो के शिखर (5835 मी०) तक है। यह पूर्व में किदुलचो की निम्नधारा से शुरू होकर प्राहियो दरिया के संगम तक तत्पश्चात प्राहियो धारा के साथ साथ दरबंग पर्वतमाला के आरम्भ तक एवं पिन दरिया और किलुंग नाला के जलग्रहण क्षेत्रों को पृथक करते हुए दरबंग पर्वतमाला से लारंगला (5370 मी०) तक तथा लारंगला से लारंगला की निम्नधारा के साथ साथ पिन दरिया के संगम तक तथा पिन दरिया की ऊपरी धारा के साथ साथ इसके शिखर तारीखांगो (4865 मी०) तक है। उद्यान की दक्षिणी सीमा तारीखांगो से शुरु होकर एक ओर कुल्लु और किन्नौर की जिला सीमा तथा दूसरी ओर लाहौल–स्पिती में शकरंग खांगो (5100मी०) तक है। यह पश्चिम में शकरंग खांगो से कुल्लू एवं लाहौल–स्पिती की जिला सीमा के साथ साथ पिन पार्वती पास से होते हुए बड़ा शिगरी ग्लेशियर तक है।

पिन घाटी, रोजर एवं पनवार (1988) द्वारा वर्गीकृत 10 जीवभूवृत्तों में से एक ट्रांस हिमालय न जोन 1 (बायोटिक प्रोविंस बी) के अंतर्गत आता है। यह पीर पंजाल पर्वत श्रृंखला की छॉव में स्थित है जहॉ वर्षा न के बराबर होती है। पूरा क्षेत्र तीव्र गति से चलती बर्फीली हवाओं, बर्षा की अत्यधिक कमी, तापमान के अत्यधिक उतार चढाव से प्रभावित रहता है जिसके कारण यहॉ की मृदा बंजर, भूक्षरण से प्रभावित तथा पारितंत्र टूटनें फूटनें वाला (Fragile ecosystem) है।

तापमान के दैनिक एवं मौसमी परिवर्तन के कारण होने वाले यॉत्रिक विघटन के फलस्वरूप यहाँ की मृदा छिछली एवं मुख्यरूप से बलुयी होती है। खिसकते हुए पहाड़ एवं नीचे की ओर बहने वाली धाराए निचली घाटियों में पौधों के लिए उपजाऊ भूमि तैयार करती है जहाँ की मृदा जलोढ दोमट या चिकनी दोमट है जिसका हाइड्रोजन आयन कान्सन्ट्रेन (pH) थोड़ा क्षारीय प्रवृत्ति लिए हुए होता है। पानी रोकने का सामर्थ्य कम होने के साथ साथ यहॉ की मृदा में नाइट्रोजन, फॉसफोरस पोटास और कार्बन की मात्रा निम्न तथा कैल्शियम की मात्रा उच्च होती है। उद्यान में जीवाश्म जैसे ब्रेकीपाड्स (Brachipods), ट्राइलोवाइट्स (Trilobites) अमोनाइटस (Ammonites) बाईवाल्वस (Bivalves) और कोरल (Corals) बहुलता से पाये जाते है जो कि इसके टिथियन उद्भव को दर्शाते है।

यहॉ तापमान वर्ष के सात महीने (अक्टूबर से मई तक) शून्य के आस पास रहता है। जनवरी फरवरी

सैग्नम गाँव (पिन घाटी राष्ट्रीय उद्यान के बफर जोन) से लिया गया एक मनोरम दृश्य

और मार्च के महीनों में यह हिमांक से नीचे चला जाता है। मई से सितम्बर महीने तक दैनिक तापमान 10 डि०से० के लगभग रहता है। इस क्षेत्र में नवम्बरसे अप्रेल तक भारी हिमपात (300 सेमी०) के कारण प्रचंड ठंड पड़ती है। यहॉ उद्यान के अंदर वर्ष में औसत वर्षा लगभग 17 सेमी० होती है। यहॉ वर्ष को चार ऋतुओं में जैसे बसंत ऋतु (16 अप्रैल से 30 जून तक), गर्मी (1 जुलाई से 15 सितम्बर तक), शरत् ऋतु (16 सितम्बर से 30 नवंबर तक) तथा शीत ऋतु (1 दिसंबर से 15 अप्रैल तक) बांटा जा सकता है।

पिन घाटी राष्ट्रीय उद्यान के भीतर लगभग 17 गॉव है जिनकी कुल जनसंख्या 1600 है। इसके अतिरिक्त यहाँ 17 डोगरियां (ग्रीष्म अवास) भी है जिनका उपयोग यहॉ के लोग गर्मी के दिनों में रहने के लिए करते हैं। उद्यान में रहने वाले लोग अनुसूचित जनजाति एवं बौद्ध सम्प्रदाय के हैं। यहॉ पर एक प्रसिद्ध गोम्पा है जो कि उद्यान के बफर जोन के कुगरी गॉव में स्थित हैं। इस गोम्पा के लामाओं द्वारा किया जाने वाला छाम नृत्य एवं वुचेन नृत्य स्पिती घाटी का प्रसिद्ध नृत्य है। उद्यान के भीतर जीविकोपार्जन के लिए यहाँ के लोग जई (Avena sativa) मटर (Pisum sativum) आलू (Solanum tuberosum) तथा मक्की (Zea mays) आदि की खेती करते है।

उद्यान के भीतर जन्तुओं एवं पक्षियों की लगभग 20 प्रजातियां है तथा यह क्षेत्र खत्म होने के कगार पर पहुॅचे बर्फील चीते (Snow-Leopard) के संरक्षण के लिए जाना जाता है जिनकी उद्यान के भीतर संख्या लगभग 12 है। इसके अतिरिक्त जन्तुओं की पायी जाने वाली अन्य जातियां जैसे जंगली बकरा (Ibex), भरल (Bharal), नेवला (Marten), लाल लोमडी (Red Fox), वीजेल (Weasel) पीका (Pika), बर्फीला मुर्गा (Snow Cock),दाढी वाला गिद्ध (Bearded Vulture), चकोर (Chukor), सुनहला गिद्ध (Golden Eagle) ग्रिफान (Griffon) लाल पैरों वाला हिमालयी कौवा (Himalayan Chough) तथा काला कौवा (Raven) आदि है।

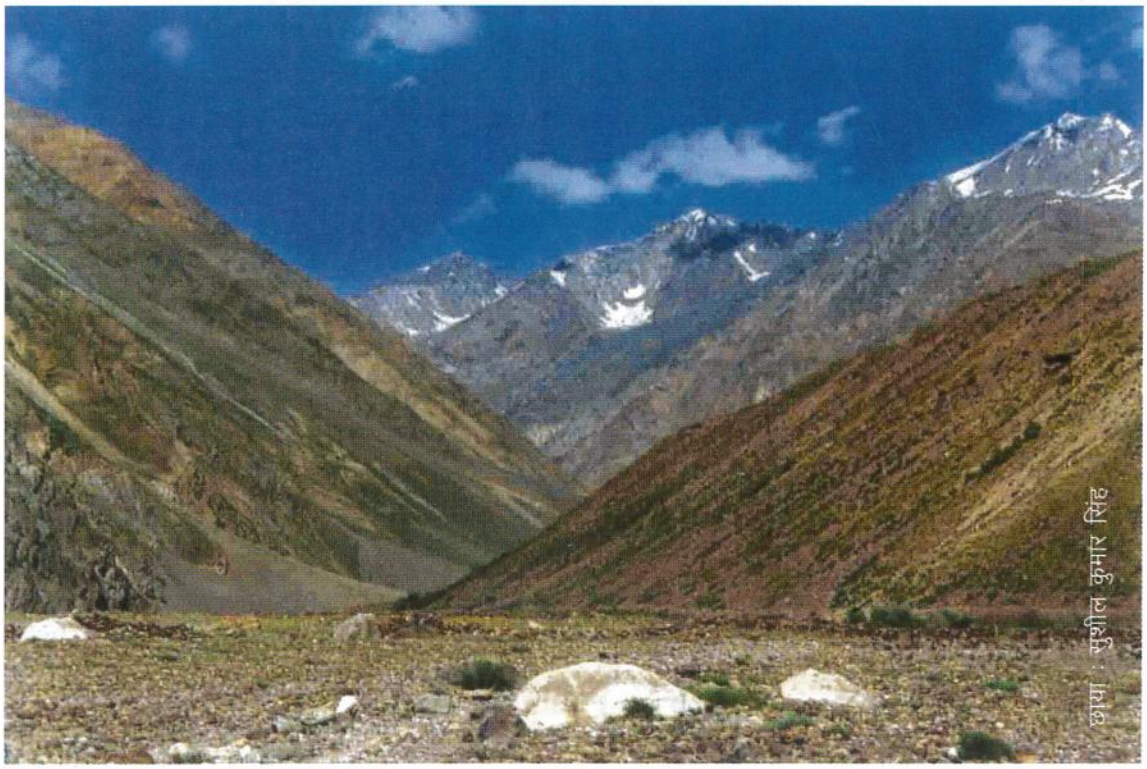

पिन घाटी के थांगो नामक स्थान से छायाचित्रित एक आदर्श शीत मरूस्थल

जलवायु की विविधता के कारण स्वाभाविक पौधे जो कि हिमालय पर्वत के अन्य क्षेत्रों में पाये जाते हैं अधिकांशत यहॉ नहीं होते। अधिकांश पौधे इस क्षेत्र की विशेष जलवायु के अनुसार अपने आपको ढालकर जीवित हैं। इसी कारण शीत् मरुस्थल की वनस्पतियों की अपनी एक विशेषता और अलग पहचान है। यहॉ की वनस्पति मुख्यतः एल्पाइन स्क्रब्स (Alpine scrubs), तथा जुनीपर स्क्रब्स (Juniper scrubs) है जिसमें मरुस्थलीय शाक जैसे क्रशचेनेन्नीकोविया सिरेट्वायडिस (Kraschennenikovia ceratoides), कौसिनिया थॉमसोनाई (Cousinia thomsonii) रोडियोला क्वाड्रीफिडा (Rhodiola quadrifida), चीनोपोडियम प्रजातियां (Chenopodium spp.) क्षुपिल पौधे पोटेन्टिला प्रजातियां (Potentilla ssp.), एस्टागैलस प्रजातियां (Astragalus spp.), कैरागाना प्रजातियां (Caragana spp.) तथा काष्ठीय क्षुपिल जैसे रोजा प्रजातियां (Rosa spp.) आरटीमीसिया प्रजातियां (Artemisia spp.), लोनीशेरा प्रजातियां (Lonicera spp.) राइब्स प्रजातियां (Ribes spp.) प्रमुख है। इसके अतिरिक्त घाटी में इफेडरा जिरारडियाना (Ephedra gerardiana) बहुतायत में मिलता है। यहॉ पर मॉस की अनेकों प्रजातियों के साथ साथ मारकेंसिया पालीमार्फा (Marchantia polymorpha) नामक लिवरवर्ट भी पाया जाता है। घाटी के ढलानों पर वनस्पति प्रायः शाकीय या घासयुक्त होती है जो कि क्षेत्र, ढलान, अधस्तर आदि के अनुसार भिन्न भी हो सकती है। कुछ आरोपित सैलिक्स (Salix) तथा पृथक समूहों में पाये जाने वाले जूनीपर (Juniper) वृक्ष जो कि ईंधन के लिए प्रयोग में लाए जाते है को छोडकर उद्यान के भीतर कोई पेड़ नही है।

पिन घाटी राष्ट्रीय उद्यान शीत मरुस्थल क्षेत्र में होने एवं वनस्पतियों तथा भौगोलिक स्थिति की विशिष्टता के कारण शोधार्थियों के लिए विशिष्ट स्थान रखता है। फलःस्वरूप इस क्षेत्र में पाए जाने वाले जन्तुओं एवं वनस्पतियों का अध्ययन विभिन्न संस्थानों द्वारा किया जा रहा है और कई परियोजनाएं चलाई जा चुकी

हैं अथवा चलाई जा रही हैं। इसी क्रम में वन्यजीव संस्थान, देहरादून के वैज्ञानिकों तथा उनके साथ कार्य करने वाले शोधार्थियों नें यहाँ के जन्तुओं विशेषकर जंगली बकरे (ibex) तथा बर्फील चीते (Snow-Leopard) के ऊपर कार्य किया है साथ ही शोध छात्रों ने डाक्टरेट की उपाधियां अर्जित की है। इस क्षेत्र की वनस्पतियों का अध्ययन करने में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के उत्तरी परिमंडल, देहरादून के वैज्ञानिकों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है जिनके संरक्षण में यहां के दो शोध छात्रों ने क्रमश प्रोटेकटेड एरिया नेटवर्क (Potected Area Network) के तहत यहां की वानस्पतिक विविधता (Floristic diversity) तथा आल इन्डिया कोआर्डिनेटेड प्रोजेक्ट आन टैक्सोनोमी (All India Coordinated project on Taxonomy) के तहत यहां के लिवरवर्टो की विविधता (Hepatic diversity) का अध्ययन कर शोध ग्रंथ लिखे है और इस क्षेत्र से संबधित कई उपयोगी सूचनाएं उप्लब्ध कराई हैं।

———————

आओ वृक्ष लगाएँ, धरती को स्वर्ग बनाएँ
सड़कों की कोरों पर, नदियों की छोरों पर
आओ वृक्ष लगाएँ, धरती को स्वर्ग बनाएँ
खेतों और खलिहानों में, बागों और बगानों में
सब मिल पेड़ लगाएँ, धरतीको स्वर्ग बनाएँ ।
आओ वृक्ष लगाएँ, धरती को स्वर्ग बनाएँ ॥

– आर. एस. शुक्ला (सौजन्य : हरित अभियान : अनुभव-2001)

सिक्किम में जंकेसी (Juncaceae)

गीतामणि छेत्री एवं टी. एम. हिनयूटा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, गंगतोक

पूर्वोत्तर भारत में सिक्किम अपनी प्राकृतिक सुंदरता, मनोरम छटा के लिये विख्यात है। सिक्किम की अनूठी भौगोलिक संरचना के फलस्वरूप उत्पन्न वनस्पति विविधता ने इस प्रदेश को अनमोल प्राकृतिक संसाधनो से समृद्ध किया है।

इस प्रदेश में नदी तट से लेकर ऊँचे पहाड़ी विभिन्न प्रकार के पेड़ पौधों से भरपूर हैं। इसी जैवविविधता के कारण यह पूर्वकाल से ही स्वदेशी एवं विदेशी वनस्पतिज्ञों व प्रकृतिविदों के लिए वानस्पतिक सर्वेक्षण एवं अनुसन्धान, अध्ययन आदि का केन्द्रविन्दु रहा है। इनमें हूकर (1848-50), थामसन (1850-57), कलार्क (1869-75, 1884), जार्ज किंग (1878,1886-92), पान्टलिंग (1885-96), गेम्मी (1887-97), केभ (1903, 1912-16), स्मिथ (1909-10), आदि बहुचर्चित है। स्वतंत्रता के बाद पुनर्गठित भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के वैज्ञानिकों ने भी सिक्किम के दुर्गम पहाडी क्षेत्रों का सर्वेक्षण कर अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के द्वारा एकत्रित ऑकड़ो के अनुसार पुष्पी पौधों में लगभग 5000 जातियाँ सिक्किम में पाई जाती हैं, जिनमें 86.5 प्रतिशत द्विबीजपत्री एवं 13.5 प्रतिशत एकबीजपत्री है। द्विबीजपत्री समूह के प्रभावी कुलों में से एस्टेरेसी, फैबेसी, रोजेसी, स्क्रोफ्युलेरियेसी, रूबीऐसी, लेमिऐसी, युफोरबीऐसी, रननकुलेसी, जेनसीयानेसी, साक्सीफ्रागेसी प्रमुख हैं; और एकबीजपत्री समूह के प्रभावीकुलों में से आर्किडेसी, जंकेसी, पोऐसी साइपरेसी, लिलिऐसी, एरेसी, जिनजिबरेसी, कोमेलाईनेसी, एरीकेसी, डायोस्कोरिएसी प्रमुख हैं। इनके अलावा अपुष्पी पौधे जैसे ऐल्गी फन्जाई, लाइकेन्स, ब्रायोफाइटस टेरिडोफाइटस, जिम्नोंस्पर्म आदि भी अच्छी संख्या मे पाये जाते है।

सभी पुष्पी पौधों में से एकबीजपत्री 'जंकेसी' (Juncaceae) कुल सबसे अधिक जातियां इसी राज्य से सूचित की गई हैं। इस कुल की पूरे विश्व में 10 वंश एवं करीब 325 जातियां पाई गई है, जबकि भारत से 2 वंश 'जङकस तथा लुजुला' लगभग 53 जातियाँ सहित रिकार्ड की गई है और केवल सिक्किम से ही दोनों वंश तथा लगभग 41 जातियाँ सूचित की गयी है। इस कुल के करीब 11 जातियां आज तक न तो पड़ोसी पूर्वोत्तर राज्यों से और न ही देश के अन्य भागों से पाई गई है, बल्कि अन्य पड़ोसी देशों जैसे चीन, नेपाल, भूटान, तिब्बत आदि से पाई गई हैं। जङक्सी के अधिकतर जातियां अधिक ऊँचाई वाली इन पौधों के लिए एक अनुकूल आश्रस्थान साबित हुआ है।

बर्फिली क्षेत्रों में इन पौधों की विभिन्न जातियाँ प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। करीब 38 प्रतिशत जातियाँ 3600-4,400 मीटर तथा 32 प्रतिशत 1800-3600 मीटर ऊँचाई में मिलते है। इनमें सबसे अधिक ऊँचाई वाली क्षेत्रों से एकमात्र 'जङकस्' मिनिमस (3900-5490 मीटर) पाई गई है, जहाँ पूरे वर्ष वर्फ से ढके होने से अन्य वनस्पति अपना अस्तित्व कायम नहीं रख सकती। अन्य कोई जातियाँ जैसे जङकस् आव्रेसियस, जङकस प्रिसमाटोकार्पस्, जङकस् बुफोनियस, जङकस् वालिचिएनस् आदि कम ऊँचाई वाली क्षेत्रों मे भी मिलते है।

ये पौधे अकसर ठंडी एवं ऊँची क्षेत्रों के दलदल नदी, नाला, झरना, सरोवर, तालाब आदि के निकट पाये जाते है। सिक्किम के महत्वपूर्ण पर्यटक-स्थलो में ऐसे कई तालाब, झील व सरोवर पड़ते है जैसे छांगु, कुपूप, मेमेन्चु पूर्व सिक्किम से, खिचुपेलरा पश्चिम सिक्किम में तथा गुरूडोङ्मार उत्तर सिक्किम में जिनके आसपास जड़केसी कुल के पौधे पर्याप्त मात्रा में देखने को मिलते है जो जून-जुलाई महिने में इन निर्जन स्थलों को अपनी रंग-विरंगी फूलों से इनकी सुन्दरता दुगुना कर पर्यटकों को लुभाते है।

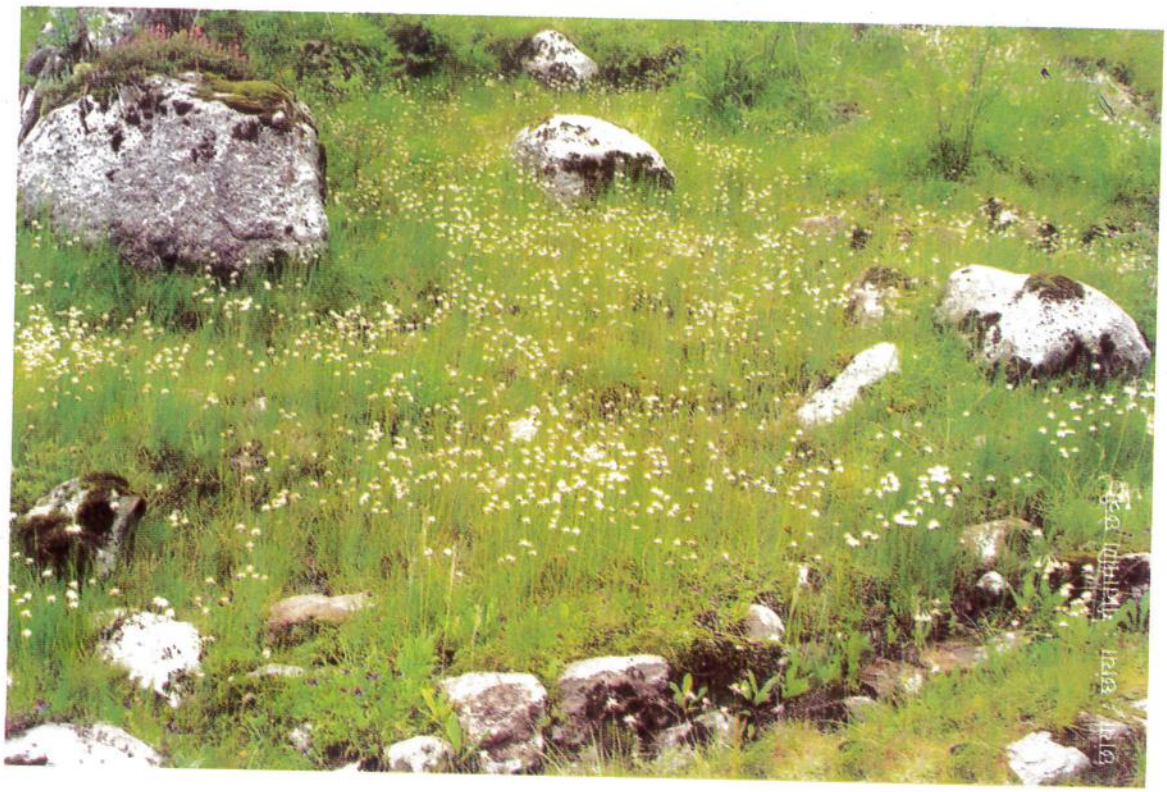

जंकस् एलोइडिस की समृद्ध समूह मेमेन्चु झील के समीप

जङकेसी कुल के पौधे अधिक ऊँचाई वाली पहाड़ी क्षेत्रों को सुन्दरता प्रदान करने के अलावा स्थानिय निवासी, पशु-पक्षी एवं पर्यावरण संरक्षण में भी योगदान देते हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में प्राकृतिक प्रकोपों में भूस्खलन की समस्या अक्सर खड़ी होती है। इन क्षेत्रों मे जङकेसी के विभिन्न जातियाँ अधिक मात्रा मे पाई जाती है (जहाँ अन्य पौधे विरल रूप में मिलते है) जो मिट्टी को बंधे रखने में बहुत बड़ी भूमिका निभाते हैं और भूस्खलन को रोकने मे सहायता पहुँचाते है। अनेको वन्य पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि आहार तथा आश्रय के लिये इन पौधों पर निर्भर है, जिनके संरक्षण में इन पौधों का एक अहम योगदान रहा है। इस कुल की सभी जातियाँ ही इन क्षेत्रों के स्थानीय निवासियों के लिये आर्थिक दृष्टि से उपयोगी है। 'याक' पालन इन क्षेत्रों में एक मुख्य पेशा है। ''याक' ही ऐसा पालतू पशु है जो अधिक ठंड और ऊँची पहाडी क्षेत्रों में पाया जाता है जहाँ 'जङकेसी' की विभिन्न जातियां इन पशुओं की मुख्य आहार है। याक से प्राप्त दूध, मक्खन, छेना छुर्पी स्थानिय लोग धरेलू व व्यवसायिक रूप में इस्तेमाल करते है और ये आमदनी का एक प्रमुख स्त्रोत है। कई जातियाँ जैसे जङकस् एफुसस, जङकस् इनफ्लेकसस, जङकस् वालिचिएनस् विभिन्न हस्तशिल्प कार्यों में प्रयोग कर घरेलू सामान जैसे टोकरी, चटाई, रस्सी, धागा आदि तैयार की जाती है। जङकस् एफुसस् के भीतरी भाग (pith) को मोमबत्ती तथा लैंम्प की बत्ती (wicks) के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। जङकस् एफुसस् तथा लुजुला क्याम्पेस्ट्रीस् में औषधीय गुण पाये गये है।

वनस्पति जगत में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखने के बाद भी पुस्तकों, पत्र, पत्रिकाओं विभिन्न पादपालयों के रिकार्ड में अल्प एवं सीमित जानकारी से ऐसा प्रतीत होता है कि 'जङकेसी' कुल पुष्पी-पौधों में एक उपेक्षित कुल है। जन साधारण को इनके महत्व व उपयोगिताओं के बारे में ज्ञान होना अनिवार्य है, ताकि समय रहते ही इनका सही संरक्षण हो सके और इन क्षेत्रों की प्राकृतिक सुन्दरता एवं सन्तुलन हमेशा बरकरार रहे।

———————

नामेरी राष्ट्रीय उद्यान की वनस्पति विविधता एवं इसका संरक्षण

शमीम सोफिका बेगम एवं टी. एम. हिनयूटा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलॉंग

जैव विविधता के दृष्टिकोण से एक प्रमुख स्थली के रूप में विख्यात पूर्वोत्तर भारत न सिर्फ अपनी दुरूह भौगोलिक संरचना बल्कि अनूठी जलवायु एवं दैनिक सुंदरता के लिए भी जाना जाता है। इसी क्षेत्र के असम राज्य में शोणितपुर जिले के अंतर्गत लगभग २०० वर्ग कि०मी० में फैला हुआ 'नामेरी राष्ट्रीय उद्यान' अपनी संरक्षित जैव विविधता के लिए प्रख्यात है। इस उद्यान की स्थापना 09 सितम्बर, 1998 ई० को पश्चिमी असम वन्य जीव विभाग, तेजपुर के द्वारा की गयी। ब्रह्मपुत्र नदी एवं अरूणाचल प्रदेश का समीपवर्ती होने के कारण इस उद्यान की भौगोलिक संरचना एवं जैव विविधता अत्यंत ही रोचक है। यह उद्यान न सिर्फ कई महत्वपूर्ण औषधीय, काष्ठोत्पादक, सजावटी एवं रोचक पौधों का भंडार है बल्कि कई दुर्लभ वन्य जीवों की भी आश्रयणी है। जंगली भैंसों, शेर, हाथी एवं जंगली कुत्तों के अलावा यहाँ उजले पंखों वाली वुड-डक (कैरीना स्कुटुलाटा) जैसे विरल पक्षियों की भी अच्छी तादाद देखी जा सकती है। उस उद्यान के अंदर बहने वाली नदी ''जिया - भोरेली'' एक विशिष्ट प्रकार की 'महासीर' मछलियों के लिए भी प्रसिद्ध है।

पूर्वकाल में यहाँ कुछ छिटपुट सर्वेक्षण कार्य भी संपादित हुए जिसमें श्री पी. सी. कॉंजीलाल (1934-40) श्री यू. एन. कॉंजीलाल (1914-15) तथा श्री जी. पाणिग्रही (1961) का नाम अग्रगण्य है। परंतु ये सर्वेक्षण कार्य मुख्यतः इस उद्यान की सीमारेखा तक ही सीमित रहे। हाल के कुछ वर्षों में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण की एक परियोजना के अंतर्गत लेखिका के द्वारा कई सर्वेक्षण भ्रमण आयोजित किए गए जिसके परिणाम स्वरूप यहाँ की अनूठी वानस्पतिक संपदा का विस्तृत आकलन करना संभव हो पाया।

वनस्पति विविधता :

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर नामेरी राष्ट्रीय उद्यान की वानस्पतिक संपदा को पाँच प्रमुख भागों में वर्गीकृत किया जा सकता हैं :

(1) उष्णकटिबन्धीय सदाहरित वन
(2) उष्णकटिबन्धीय अर्द्धसदाहरित वन
(3) उष्णकटिबन्धीय आर्द्रपर्णपाती वन
(4) नदी तट पर स्थित वन, और
(5) घासवन।

इसी अध्ययन के फलस्बरूप यहाँ 110 कुल के पुष्पी पौधों की 471 प्रजातियों की पहचान की गई जिनमें 375 द्विबीजपत्री समूह के एवं 96 एक बीजपत्री समूह के पौधे हैं। इनमें से 27 प्रजातियों के साथ पोएसी सबसे प्रभावी परिवार के रूप में आकलित किया गया। अन्य प्रमुख कुलों में एस्टेरेसी (20); यूफॉर्बिएसी (20) आर्किडेसी (16) रूबिएसी (15) तथा साइपरेसी (15) शामिल हैं। पुष्पी पौधों के अलावा यहाँ द्रुम पर्णांगों की भी अच्छी संख्या पाई जाती है।

औषधीय पौधे :

उपरोक्त अध्ययन के फलस्वरूप यहाँ की वन-संपदा से लगभग 85 प्रकार के महत्वपूर्ण औषधीय पौधों की पहचान की गई। ये पौधे इस उद्यान में या इसके आसपास निवास करने वाली विभिन्न जन-जातियों के द्वारा विभिन्न व्याधियाँ यथा –सर्दी - खाँसी, बुखार, दमा, रक्त शुद्धिकरण, पीलिया आदि के शमन हेतु प्रयोग में लाए जाते हैं। इन पौधों में अल्पीनीया नाइग्रा, एल्सटोनिया स्कॉलेरिस, एन्ड्रेग्राफिस पैनीकुलाटा, एजीरेटम

नामेरी राष्ट्रीय उद्यान में विचरण करता एक हाथी

कॉनीजॉइड्स, आर्टीमीसिया इंडिका, बड्डलिया एशियाटिका, कैरिया आर्बोरिया, कॉस्टस स्पेशियोसस, सेन्टेला एशियाटिका, साइपरस रोटेन्डस, डिलेनिया इंडिका, ड्रायमेरिया ड्राएँड्रा, स्कोपेरिया–डल्सिस, स्टीफेनिया जैपोनिका, वाइटेक्स निगंडो आदि शामिल हैं।

वन्य सजावटी पौधे :

नामेरी राष्ट्रीय उद्यान कई ऐसे सुंदर जंगली पौधों का भी भंडार है जो बागवानी के दृष्टिकोण से उपयुक्त हैं और यदि इनका सही प्रकार से दोहन किया जाय तो ये आर्थिक लाभ भी प्रदान कर सकते हैं। ऐसे पौधों में कई सुन्दर ऑर्किड जैसे–एरीड्स मल्टीफ्लोरम, अरूंडिना ग्रैंमिनीफोलिया, सिम्बिडियम ओलोइफोलियम, डेन्ड्रोबियम मॉस्केटम, पैपीलियोनैन्थे टेरेस आदि के अलावा विगोनिया रॉक्सबर्गाई, कैनेरियम बेंगालंसिस, हेडिकियम स्टीनोपेटलम, होम्सकॉल्डिया सैंगुइना, मेलास्टोमा मालाबाथ्रिकम, मूसा वेल्यूटीना जैसे पौधे भी शामिल हैं।

कुछ स्थानीय एवं विरल पौधे :

यह उद्यान उपरोक्त पौधों के अलावा कई विरल एवं स्थानिक पौधों की भी आश्रयणी है। यहां पाए जानेवाले कुछ प्रमुख स्थानिक पौधोंमें ग्लोकीडियोन असामिकम, फोबे कोओपेरियाना, फोबे ग्वालपारेन्सिस आदि शामिल है जबकि कुछ महत्वपूर्ण विरल पौधों में एक्लिलेरिया मालाकेन्सिस, हेड्योटिस ब्रूनोन्सिस, साइथिया जाइगेन्शिया शामिल हैं।

संरक्षण :

किसी भी क्षेत्र की वन संपदा का ज्ञान उस जगह की जैवविविधता के संरक्षण हेतु अत्यावश्यक है। प्रस्तुत अध्ययन में यह प्रयास किया गया है कि यहाँ पाए जानेवाले प्रत्येक पौधे की वर्तमान स्थिति एवं सांख्यिकी का पूरा अध्ययन किया जाय जिससे उनके संरक्षण हेतु प्रयासों में आसानी हो। हालाँकि इस उद्यान को एक संरक्षित क्षेत्र घोषित करना भी सरकार का एक सराहनीय कदम है परंतु उद्यान में स्थानीय निवासियों का बढ़ता अतिक्रमण, कुछ अपतृणों जैसे–लीया क्रिस्पा, यूपेटोरियम ओडोरेटम, लैन्टेना कमारा, आइकॉर्निया क्रैसिपस आदि की बढ़ती संख्या तथा हर साल आनेवाली बाढ के द्वारा मृदा अपरदन यहाँ की वानस्पतिक संपदा के लिए खतरा उत्पन्न कर रहे हैं अतः यह आवश्यक है कि इन जैव एवं अजैव खतरों से इन्हें बचाने के हर संभव प्रयास किए जाएँ ताकि इस उद्यान की वानस्पतिक संपदा यूँ ही बनी रहे।

———————

डोडीताल में वानस्पतिक सर्वेक्षण – एक अवलोकन

जे. आर शर्मा, दीपिका बिष्ट व बी. पी. उनियाल
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

हिमालय पर्वत श्रृंखला की प्राकृतिक सुन्दरता व प्रचुर वानस्पतिक विविधता हमेशा से ही वनस्पति शास्त्रियों, पर्यटकों व प्रकृति प्रेमियों को अपनी ओर आकर्षित करती रही है। इसी पर्वत श्रृंखला के पश्चिमी भाग में बसे उत्तरांचल राज्य के उत्तर काशी जिले में स्थित 'डोडीताल' एक ऐसी झील है, जिसके प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द उठाने पर्यटक यहाँ आते रहते हैं। वानस्पतिक विविधता के अध्ययन की दृष्टि से भी यह स्थान हमेशा ही वनस्पतिशास्त्रियों के लिये महत्वपूर्ण रहा है। 3004 मी. की ऊँचाई पर स्थित यह झील गंगोत्री राजमार्ग पर उत्तरकाशी से लगभग 32 कि.मी दूर है। झील की तरफ जाने वाला मार्ग उत्तरकाशी से 4 कि. मी. दूर गंगोरी नामक स्थान से शुरू होता है जिसके आगे कण्डयाली तथा एगोडा नामक गॉव है। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के देहरादून स्थित उत्तरी परिमण्डल द्वारा इस झील तथा उसके आसपास के वानस्पतिक सर्वेक्षण तथा कवक संग्रहण के उद्देश्य से वर्ष 1996 के सितम्बर माह में एक 5 सदस्यीय दल भेजा गया जो 17 सितम्बर 1996 को देहरादून से ऋषिकेश, नरेन्द्रनगर, टिहरी, उत्तरकाशी तथा गंगोरी होते हुए संध्या समय कण्डयाली पहुँचा। इस मार्ग से गुजरने पर जगह-जगह उपोष्ण कटिबन्धीय वन देखने को मिले जहाँ Grewia optiva, Butea monosperma, Toona ciliata तथा Leptodermis, Clrodendrum व Acacia की जातियों की अधिकता थी। दक्षिणी दिशा की तरफ की पर्वतीय ढलानों पर जहाँ मुख्यतः Euphorbia royleana तथा Aidia tetrasperma जातियां उग रही थी पर्वतों के निचले नम तथा छायादार स्थानों में आस-पास के ग्रामीणों द्वारा खेत बना लिए गये थे जबकि चोटियों पर Pinus roxburghii के घने वन दिखाई पड़ रहे थे। प्रस्तुत लेख में उपरोक्त सर्वेक्षण के दौरान इस क्षेत्र की वानस्पतिक, विशेषकर कवकों की विविधता का संक्षेप में वर्णन किया गया है।

कण्डयाली से एगोडा

कण्डयाली गाँव तक ही मोटर मार्ग था, और इससे आगे का रास्ता पैदल ही तय करना पड़ा। खच्चरों के गुजरने से बना यह संकरा मार्ग खेतों से होकर 'एगोडा' नामक गाँव तक पहुँचता है जो इस मार्ग पर पड़ने वाला अन्तिम गाँव है। इस पूरे मार्ग से गुजरते हुए ग्रामीणें द्वारा बनाये गये खेत देखे गये जहाँ धान, Fagopyrum, Eleusine तथा 'maranthus की जातियों की खेती की जा रही थी हालांकि इन्ही के साथ-साथ कहीं-कहीं मिश्रित वन भी थे जिनमे Alnus nepalensis, Aesculus indica, Juglans regia तथा Populus, Prunus एवं Pyrus की जातियाँ मुख्य रूप से उग रही थीं, जबकि चोटियों पर (Pinus wallichiana) की अधिकता थी। कवकों में मुख्यतः, यहाँ Ganoderma applanatum, Phellinus pectinatus, Earliella scabrosa तथा Phellinus pini नामक जातिया देखी गयीं। सड़ी -गली लकड़ियों पर मुख्यतः Daldinia concentrica तथा Hypoxylon fragiforme के काले तथा गोलनुमा कवककाय उगे हुये थे।

एगोडा से मांजी

एगोडा से मांजी पहुँचने तक का संकरा पर्वतीय मार्ग घने शीतोष्ण वन से होकर गुजरता है जहाँ मुख्यतः Quercus himalayana, Q. semecarpifolia, Acer caesium तथा Rhododendron arboreum

लकड़ी पर उगता खाद्योपोगी प्लयूरोटस ऑस्ट्रीटस

नामक जातियों का मिश्रण था। एगोडा के निकट शंकुधारी जातियों में मुख्यतः Cedrus deodara एवं Pinus wallichiana तथा मांजी के निकट Abies pindrow नामक जातियाँ देखी गयी। इन्हीं बड़े पेड़ों के नीचे उगी हुयी शाकीय जातियों में मुख्यतः Cirsium, Goodyera, Habenaria, Hemiphragma तथा Rubus की जातियाँ पायी गयी। Trichaptum abientinus, Trametes hirsuta, Phellinus xeranticus, Lenzites acuta, L. betulina तथा Fomes fomentanius यहाँ पर देखी गयी कवक जातियाँ है जो लकड़ियों के ऊपर उग रही थी। यहाँ से कुछ अन्य कवक वंशो जैसे Phellinus, Oxyporus, Rigidoporus Russula तथा Lactarius के भी कुछ नमूने एकत्रित किए गये।

मांजी से डोडीताल

अन्त में घने जंगलों के बीच इस सुन्दर पहाड़ी मार्ग से गुजरते हुए सर्वेक्षण दल मुख्य झील तक पहुँचा। यह झील चारों तरफ से ऊंचे हिमाच्छादित पर्वतों तथा हिमनदों से घिरी हुयी है। अनेकों सुन्दर झरने तथा छोटी पहाड़ी नदियाँ इस स्थान की सुन्दरता को और भी निखार देती हैं। इस स्थान के पास की ऊपरी पर्वत मालाए तो वर्ष में लगभग 9–10 महीने बर्फ से ढकी हुयी रहती हैं। अत्यधिक वर्षा, नमी तथा कम तापमान यहाँ की वनस्पति को प्रभावित करने वाले प्रमुख जलवायुवीय कारक है। झील के चारों तरफ Quercus semecarpifolia, abies pindrow, Taxus wallichiana तथा Betulautilis के घने जंगल मनोहर दृश्य उपस्थित कर रहे थे जबकि पास के पर्वतीय ढलान मुख्य रूप से Salix, Caltha, Potentilla, pedicularis, Polygonum तथा Impatiens की जातियों को आश्रय प्रदान किये हुये थे। ऊँचाई वाले स्थानों पर सफेद फूलों वाले Sedum linerifolium तथा पीले फूल वाले Potentilla की जातियाँ बड़ी ही मनमोहक दृश्य प्रस्तुत कर रही थी। यहाँ पर पायी जाने वाली कुछ अन्य जातियाँ Lyonia ovalifolia, Sedum quadrifidum, Solidago virgaaurea, Swertia cordata तथा Viburnum व Cotoneaster आदि वंशों की जातियाँ थीं। लकड़ियों पर उगने वाली कवक जातियों में मुख्यतः Hymenochaete rubiginosa, Antrodiella Zonata, Stereum hirsutum, S. gaussapatum, Trametes versicolor तथा Daedalea incana यहाँ पर पायी गयी। पफ बॉल, लाइकोपरडॉन की भी दो जातियों को इस क्षेत्र से एकत्रित किया गया। जहरीले कवकों में Russula emetica, R. subalpina तथा Lactarius vellereus इस स्थान पर देखी गयी। काले डण्डेनुमा कवककाय वाले Xylaria वंश की ही लगभग दस जातियाँ इस स्थान पर देखी गयी। जिनमें X. longipes तथा X. polymorpha प्रमुख थी। पेड़ के तनों के पास सड़ी-गली पत्तियों के ऊपर Leotia lubrica, Bulgaria inquinan तथा Neobulgaria pura उग हुयी थी। नीले हरे कवककाय वाले Chlorocibaria तथा चटक पीले रंगों वाले Bisporella की जातियाँ लकड़ियों पर उगने

डेडेलिया इंकेना लकड़ी पर साधारणतया उगनेवाला कवक

वाली जातियां में प्रमुख थी लेकिन Boletopsis, Suillus, Leccinum, Boletus तथा Xerocomus जैसे सर्वत्र पाये जाने वाले वंशों की जातियों के कवकों का इस क्षेत्र में न मिलना काफी आश्चर्यजनक था। पेड़ के तनों के ऊपर Pleurotus flabellatus नामक जाति भी प्रचुर मात्रा में उग रही थी। तनों के सड़ने के लिये उत्तरदायी Microporus, Trametes तथा Fomitopsis वंशों की 3–4 जातियाँ भी इस क्षेत्र में देखी गयी। Microporus xanthopus तथा M. affinis भी इस क्षेत्र में बार-बार देखी गयी कवक जातियाँ हैं। Phellinus तथा Xylobolus की जातियाँ ने तो कुछ पेड़ों की लकड़ियों को इतनी बुरी तरह से सड़ा दिया था कि पेड़ धराशायी होकर पड़े थे। Phellinus allardii तथा Xylobolus subpileatus की जातियाँ भी जीवित वृक्षों पर देखी गयी। 2200 मी. की ऊचाई पर Ganoderma तथा Amauroderma की जातियां जीवित तथा मृतप्राय दोनों तरह के वृक्षों पर उगी हुयी थीं। Gloephyllum तथा Antrodia की जातियाँ मुख्य रूप से शंकुधारी वृक्षों की टूटी हुयी लकड़ियों पर उग रही थी। कुछ अन्य पेड़ भी Laetiporus sulphureus नामक कवक जाति के कारण बुरी अवस्था में थे। तनों के सड़ने के लिए उत्तरदायी एक अन्य जाति Schyzophyllum commune इस क्षेत्र में जीवित तथा मृतप्राय दोनों ही प्रकारकें वृक्षों पर देखी गयी। Pleurotus वंश की भी 4–5 जातियाँ इस क्षेत्र से एकत्रित की गयी। जिनमें से P. sapidus तथा P. ostreatus नामक खाद्योपयोगी जातियाँ भी मृतप्राय लकड़ियों पर उगी हुयी थी। Cantharellus Craterellus Lentinus की जातियाँ भी यहाँ प्रचुरता में देखी गयी। पेटू कवकों की भी कुछ जातियाँ यदा कदा दिखाई पड़ी जिनमें Crucibulum, Cyathus, Nidula, Nidularia, Geastrum, Calvatia, Lycoperdon तथा Bovista वंशों की जातियां प्रमुख थी।

डोडीताल से सेना

डोडीताल में लगभग 5 दिन सर्वेक्षण करने के पश्चात् दल सेना पहुँचा। यहाँ वनों में Rhododrendeon, Quercus, Betula तथा अन्य उपहिमाद्रि क्षेत्रों में पायी जाने वाली जातियों के पेड़ उगे हुए थे। इससे उपर केवल कुछ झाडीनुमा जातियों जैसे Juniperus, Rhododendron lepidotumतथा कुछ Abies pindrow व Betula utilis के पेड़ देखे गये। कवक जातियों में Phellinus laevigatus, P. nigricans, Piptoporus betulina तथा Inonotus tenuicarnis मुख्य रूप से देखी गयी। Betula के वृक्षों पर Piptoporus betulae, Phellinus nigricans तथा P. laevigatus की जातियाँ Rhododendron के वृक्षो पर Phellinus acontextus तथा Abies के वृक्षों पर Inonotus radiatus नामक कवक जातियां मुख्य रूप से उग रही थी। Antrodia, Trametes तथा Stereum की जातियाँ भी मृतप्राय लकड़ियों पर बार बार देखी गयीं,

जबकि जमीन में मिट्टी के ऊपर Coprinus, Hypholoma, Mycena, Russula तथा Lactarius की जातियाँ पायी गयीं।

यहीं से कुछ दूर 'डारवा टॉप' नामक पर्वत शिखर से हिमाच्छादित पर्वतों तथा हिमनदों का मनोहर दृश्य देखा जा सकता है। यही पर हिमाद्रि क्षेत्र में उगने वाली लगभग सभी झाड़ीनुमा जातियाँ पायी जाती हैं। कहीं-कहीं पर Rhododendron, Cotoneaster तथा Juniperus के छोटे-छोटे वृक्ष भी देखे गये। इसके अतिरिक्त यहाँ पर Corydalis, Anemone, Pedicularis, Sedum, Poa, Carex तथा Juncus आदि शाकीय वंशों के पौधे भी देखे गये जिनके फूलों के कारण यह स्थान रंग बिरंगी कालीन से ढका हुआ प्रतीत हो रहा था। यहाँ पर लकड़ियों पर उगने वाली कवक जातियाँ नगण्य थी। केवल Hygrophorus, Naucoria Leptonia आदि की जातियाँ ही अधिकांश स्थलों पर देखने को मिली। Coprinus तथा Paneolus नामक कवक जातियाँ भी गोबर के ऊपर उगती हुयी देखी गयी। जिन क्षेत्रों में बर्फ पिघल रही थी वहाँ पर भी Boletus, Russula तथा Hygrophorus की जातियाँ उगती हुयी देखी गयी।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि डोडीताल मात्र रमणीक स्थल ही नहीं, वानस्पतिक सम्पदा का भी धनी है। पुष्पी पौधों की विविधता तो यहाँ है ही, अपुष्पी पौधों, विशेषकर कवकों की भी यहाँ विविधता देखने को मिलती है। Phellinus, Lactarius, Trametes, Stereum, Xylobolus, Boletus, तथा Hymenochaete आदि वंशो की जातियों का यहाँ प्रचुर मात्रा में पाया जाना इसका प्रमाण हैं।

———————

वैज्ञानिक अध्ययन में रंग की उपयोगिता

ए. बी. डी. सेलवम
मुख्यालय, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

हमारे चारो तरफ रंग बिखरे हैं। हमारे ग्रह–''पृथ्वी'' को नील ग्रह भी कहा जाता है। पृथ्वी पर तो रंगों की भरमार है। जड़ चेतन–सभी जीव-जन्तुओं तथा वस्तुओं (बालू, पत्थर, आकाश, आग आदि) के अपने अपने रंग हैं।

प्राकृतिक रंगों का आधार है सूर्य की किरण। विघटित होने पर किरण के सात रंग अलग-अलग दीखने पर उसे इन्द्रधनुष कहा जाता है। सूर्य की किरण जब जल की बूदों (वर्षा, फुहार, कुहासा) पर पड़ती है तो अलग अलग रंग दिखाई देता है। इन्द्र धनुष में अन्दर से बाहर रंगक्रम होता है बैगनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी एवं लाल। रंग प्रकृति की वह देन है जिससे अलग अलग वस्तुओं की पहचान होती है। रंग किसी वस्तु का वह गुण है जो उसे परावर्तित प्रकाश से मिलता है।

रंग हमारे लिए क्ई तरह से उपयोगी हैं। पेड़-पौधे, उनके विभिन्न अंग, बहुमूल्य पत्थर (रत्न) को पहचानने में, विभिन्न त्योहार मनाने (होली रंगों का त्योहार है) चिकित्सा (कलर थेरैपी) के अलावा एक हद तक लोगों के मन तथा मनोवृत्ति जानने में भी रंग सहायक होते हैं। हम किसी रंग को पसंद या नापसंद करते हैं तो इससे हमारी मनोवृत्ति का परिचय मिलता है।

रंग एवं पेड़-पौधे–

लाल, हरा एवं नीला प्राथमिक रंग हैं। प्राथमिक रंगों को समान अनुपात में मिलाने से द्वितीयक रंग बनते हैं। लाल, पीला, हरा, नीला, बैगनी, काला एवं सफेद को मूल रंग कहते हैं। इन मूल रंगों को विभिन्न अनुपातों में मिलाने से हजारों रंग बनते हैं। जीव वैज्ञानिकों की धारणा है कि सजीव के क्रमबद्ध वर्गीकरण, वर्णन और अभिनिर्धारण हेतु लगभग 2500 अलग अलग रंगों के प्रयोजन होंगे। पेड़-पौधे, उनके पत्ते, फूल, फल, बीज आदि के अध्ययन में रंग का विशेष महत्व है।

पराबैगनी एवं इंफ्रारेड (अवरक्त) विकिरण

सूर्य प्रकाश का (किरण या विकिरण) प्राथमिक स्रोत है। ऊर्जाका एक रूप है प्रकाश। विद्युत चुम्बकीय विकिरण का एक भाग है सूर्य किरण जो हम देखते हैं। विद्युत चुम्बकीय विकिरण के सम्पूर्ण आयाम को विद्युत चुम्बकीय प्रभा मंडल कहते हैं जिसमें रेडियो तरंग, सूक्ष्म तरंग, इंफ्रारेड विकिरण, दृश्य प्रकाश, पराबैगनी विकिरण, एक्स-रे तथा गामा-रे होते हैं।

दृश्य प्रकाश के बैगनी छोरसे परा बैगनी विकिरण एक्स-रे क्षेत्र में जाकर लगभग 400 नेनो मीटर एवं 10 नेनोमीटर के तरंग दैर्घ्य के बीच रहती है। इंफ्रारेड (अवरक्त) विकिरण सूक्ष्म तरंग क्षेत्र से दृश्य प्रकाश क्षेत्र के लाल किनारे तक जाती है। इसकी तरंग दैर्घ्य लगभग 0.7 से 1,000 माइक्रोमीटर्स के बीच होती है। अल्ट्रा का अर्थ ऊपर (परा), इंफ्रा का अर्थ है नीचे। पराबैगनी विकिरण दृश्य प्रकाश के बैगनी रंग के उपर तथा इंफ्रारेड विकिरण दृश्य प्रकाश के लाल रंग के नीचे होता हैं। परा बैगनी एवं इंफ्रारेड विकिरण क्ई तरह से हमारे लिए उपयोगी है। परा बैगनी विकिरण से नवजात शिशु के पाण्डु रोग की चिकित्सा, उपकरणों के विसंक्रमण, कृत्रिम प्रकाश एवं फ्लूओरेसेंस (प्रतिदीप्ति) के विश्लेषण आदि कार्य होते हैं। इंफ्रारेड तरंग दैर्घ्य रात्रि दृष्टि

उपकरण, आणविक स्पेक्ट्रोस्कोपी उष्मापेक्षी मिसाइल आदि के लिए उपयोगी है।

भेषज विज्ञान के अध्ययन में रंग–

किसी भी वस्तु पर प्रकाश पड़ने से वह उसका अवशोषण करता हैं एवं कुछ वस्तुएँ उसे परावर्तित करती हैं। परावर्तन को फ्लूओरेसेंस (प्रतिदीप्ति) कहते हैं। भेषज विज्ञान के अध्ययन में प्रतिदीप्ति एक बहुमूल्य मापदंड है। भेषज विज्ञान औषधीय पौधों का अध्ययन है। प्रतिदीप्ति अध्ययन/विश्लेषण में औषधीय पौधे अथवा उसके भाग (क्रूड ड्रग) का चूर्ण, घोल, एब्सट्रैक्ट की जाँच हो सकती है। परा बैगनी प्रकाश/विकिरण के अन्तर्गत क्रूड ड्रग्स से उसमें विद्यमान फाइटोकेमिकल्स की प्रकृति के अनुसार विशेष प्रतिदीप्ति गुण (रंग) निःसृत होता है। प्रतिदीप्ति गुण (रंग) के लिए जिम्मेदार पदार्थ (फाइटोकेमिकल्स) का अक्सर अभिनिर्धारण नहीं होता है। क्रूड अवस्था में पादप नमूने के अभिनिर्धारण या प्रामाणिकता सुनिश्चित करने के लिए इस प्रक्रिया की सरलता एवं क्षिप्रता विश्लेषण में अत्यधिक उपयोगी है। व्यापार में होने वाली मिलावट की भी इससे जाँच होती है।

रंगो की उपयोगिता का यह संक्षिप्त विवरण है। संसार का आलम्ब रंगों के समलम्ब पर आधारित है।

———————

शुक्ल शुभ्र शुचि श्वेत विशद श्येत पाण्डराः
अवदातः सितो गौरोऽवलक्षो धवलोऽर्जुनः
हरिणः पाण्डुरः पाण्डुरीषत्पाण्डुस्तु धूसरः॥
कृष्णो नीलाऽसित श्याम काल श्यामल मेचकाः
पीतो गौरो हरिद्राभः पालाशो हरितो हरित्॥
रोहितो लोहितो रक्तः शोणः कोकनदच्छविः
अव्यक्त रागस्त्वरूणःश्वेतरक्तस्तु पाटलः॥
श्यावः स्यात्कपिशो धूम्रधूमलौ कृष्णलोहिते
कडार कपिलः पिंगपिशंगौ कद्रुपिंगलौ
चित्रं किर्मीरकल्माषशबलैताश्च कर्बुरे
गुणे शुक्लादयः पुंसि, गुणिलिंगास्तु तद्वति॥

(अमरकोश)

बायोइन्फार्मेटिक्स : नई संभावनाएं

डा. एस. एल. गुप्त
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

पर्यावरण, जैवप्रोद्यौगिकी एवं जैव विविधता के बाद जो एक नया शब्द आज वैज्ञानिकों के साथ-साथ जन मानस को आकर्षित कर रहा है, वह है बायोइन्फार्मेटिक्स अर्थात जीव सूचना विज्ञान। अभी इसका क्षेत्र, बिल्कुल नया है परन्तु आने वाले वर्षो में यह सबकी जुबान पर होगा। बायोइन्फार्मेटिक्स का अर्थ है – जैविक सूचना के प्रबंधन में कमप्यूटर प्रोद्यौगिकी का उपयोग। ये सूचनाएं वनस्पति जगत की भी हो सकती हैं और प्राणिजगत की भी।

पिछले कई दशकों में जहां एक ओर अणु जीवविज्ञान के क्षेत्र में नई प्रगति और उन्नत उपकरणों की उपलब्धता हुई है, वहीं दूसरी ओर साइबर क्रांति द्वारा ज्ञान के लगभग सभी ज्ञात क्षेत्रों में, जिनमें जीव विज्ञान भी शामिल है, सूचनाओं की बाढ़ आ गई है। स्पष्टतः जीव विज्ञान के क्षेत्र में कमप्यूटर द्वारा उपलब्ध सूचनाओं के अनुप्रयोग ने ही बायोइन्फार्मेटिक्स को जन्म दिया है। बहुचर्चित मानव जीनोम परियोजना के कारण इस क्षेत्र के विस्तार की अत्यधिक सम्भावनाएं व्यक्त की जाने लगी है, उसका परिणाम अब धीरे धीरे सामने आने लगा है क्योंकि देश-विदेश की बायोटेक कम्पानियों एवं शोध संस्थानों द्वारा बायोइन्फार्मेटिक्स विशेषज्ञों की मांग बड़े पैमाने पर होने लगी है। विस्तार में जाने से पहले बायोइन्फार्मेटिक्स की महत्ता जान लेना आयश्यक है।

बायोइन्फार्मेटिक्स के उपयोग एवं कार्यो को आनुवंशिकी, वनस्पति, जन्तुविज्ञान, सूक्ष्मजीव विज्ञान आदि के क्षेत्र में चमत्कारी माना जा रहा है जो कि निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट है–

1. आनुवंशिक रोगों का निदान : पीढ़ीदर पीढ़ी प्रकट होने वाले आनुवंशिक रोगों के कारणों का पता लगाने के साथ-साथ उनके उपचार में बायोइन्फार्मेटिक्स का उपयोग प्रभावी है।

2. औषीध संरचना में उपयोग : ड्रग डिजाइन में नये खोज की परिकल्पना बायोइन्फार्मेटिक्स ने बढ़ा दी है जिसके फलस्वरूप रोगों के उपचार हेतु शोध को बढ़ावा मिल रहा है।

3. औषधि क्रिया का ज्ञान : औषधियों के क्रियाओं के बारे में आनुवंशिक स्तर पर जानकारी हेतु बायोइन्फार्मेटिक्स उपयोगी है। यह कैंसर एवं एड्स जैसे असाध्य रोगों के नियंत्रण पर भी महत्वपूर्ण हो सकता है। इससे यह भी पता लगाया जा सकता है कि औषधियां कुछ मरीजों पर प्रभावशाली क्यों होती हैं और कुछ पर अप्रभावी या अल्पप्रभावी क्यों होती है।

4. नई वनस्पतियों एवं जन्तुओं की प्रजातियों का उद्भव :वनस्पतियों एवं जन्तुओं की क्लोनिंग में चावल व गेहूँ की नई प्रजातियों का विकास तथा डॉली भेड़ की जेनेरिक उत्पत्ति इसके मुख्य उदाहरण है। अब विभिन्न प्रजातियाँ की संजीन अनुक्रमण (जीनोम सिक्वेसिंग) कल की बात हो गई है।

असीमकेन्द्रकी (प्रोकैरयोट्स) जैसे बैक्टीरिया एवं साइनोबैक्टीरिया के जीनोम्स के साथ-साथ ससीमकेन्द्रकी (यूकैरयोट्स) जैसे बेकर यीस्ट (सैकरोमाइसीस सेरीविसी) आदि की सिक्वेंसिंग अब ज्ञात है। इसी का अगला कदम मानव जीनोम प्रोजेक्ट है।

5. प्रजातियों की कमप्यूटर कोडिंग : सभी उपलब्ध प्रजातियों के कम्पूटरीकरण में बायोइन्फार्मेटिक्स का भरपूर उपयोग किया जा सकता है जिससे एक ही स्थान पर सारी जानकारी उपलब्ध हो सके।

मूलतः जीवविज्ञान के साथ-साथ कम्पूटर के क्षेत्र में प्रशिक्षित लोग बायोइन्फार्मेटिक्स के क्षेत्र में सबसे ज्यादा सफल है। आज देश के कई विश्वविद्यालय स्नातक योग्यता प्राप्ति के पश्चात बायोइन्फार्मेटिक्स में डिप्लोमा अथवा परास्नातकं करने की सुविधा दे रहे हैं जिनमें से कुछ निम्न हैं :

– जवाहर लाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
– पूणे विश्वविद्यालय, पूणे
– मदुरै कामराज विश्वविद्यालय, मदुरै
– भारतीय विज्ञान संस्थान, बेंगलूर
– बोस संस्थान, कोलकाता
– सूक्ष्म जीव विज्ञान प्रोद्यौगिकी संस्थान, चंडीगढ़
– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
– कोशीय एवं आणविक जीवविज्ञान केंद्र, हैदराबाद
– राष्ट्रीय प्रतिरक्षा संस्थान, नई दिल्ली
– इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

इनमें से क्ई उपरोक्त संस्थानो / विश्वविद्यालयों में विकेंद्रित सूचना केंद्र बनाए गए हैं जिनके साथ लगभग 15 प्रायोगिक केंद्र जुड़े हैं। आपस में जुड़ने के साथ-साथ ये सभी केंद्रीय सूचना तंत्र, जैव प्रोद्यौगिकी विभाग नई दिल्ली से भी जुड़े हुए हैं।

दूसरे क्षेत्रों से बायोइन्फार्मेटिक्स के क्षेत्र में आना इस बात पर निर्भर है कि आपकी योग्यता क्या है और आप क्या करने जा रहे हैं। स्पष्टतः यहां मुख्य रूपसे जीवविज्ञान की ज्यादा जानकारी के साथ-साथ इतना कम्पूटर ज्ञान भी होना चाहिए जिससे प्रोग्रामर के साथ सहयोगपूर्वक कार्य कर सकें और आवश्यक होने पर वेब पेज पर सूचनाओं के प्रदर्शन की व्यवस्था सुचारू रूप से कर सके। इसके अतिरिक्त छोटी जानकारी के प्रति सजगता और विश्लेषण की प्रवृत्ति का होना भी आवश्यक है। साथ ही रचनात्मकता का गुण एक अतिरिक्त योग्यता दर्शाता है क्योंकि उसी की वजह से विभिन्न सूचनाओं को एकत्रित एवं संयोजित करके अनेकों समस्याओं को सफलतापूर्वक हल करने के लिए नए विचार एवं विधि का विकास हो सकता है जो इस क्षेत्र में प्रगति के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न देशों के लोगों के साथ काम करने के लिए आवश्यक है कि संवाद कला एवं सूचनाओं के आदान-प्रदान में भी निपुणता प्राप्त हो।

इस विशिष्ट क्षेत्र का मुख्य कार्य जैविक सूचनाओं के डाटा बेस तैयार करने के साथ ही इसके समुचित रख-रखाव का भी है। इसके अलावा डाटाबेस की डिजाइनिंग एवं ऐसे इंटारफेस के विकास का भी है जहाँ से वैज्ञानिक और शोधकर्ता सूचनाओं को पाने के साथ-साथ नई सूचनाओं को भी जोड़ पायेंगें। उन सबके कारण बायोइन्फर्मेटिक्स की मात्रा जीन सिक्वेंसिंग के अलावा अन्य क्षेत्रों जैसे न्यूरोइन्फार्मेटिक्स एवं जैव विविधता आदि में भी बढ़ गई है। इस डाटाबेस का प्रयोग नई दवाइयों के निर्माण एवं मरीजों पर परीक्षण के क्षेत्र में क्रांतिकारी तो है ही सिक्केन्स विश्लेषण से प्रोटीन संरचना का अनुमान लगाकर संभावित औषधि प्रयोग के लक्ष्य निर्धारण को बायोइन्फार्मेटिक्स सफल बना सकता है।

बायोइन्फार्मेटिक्स का क्षेत्र शुरु से ही बायो टेकनोलाजी से जुड़ा रहा है क्योंकि यही क्षेत्र जीन संरचना आनुवंशिकी एवं विभिन्न एंजाईम्स के बारे में जानकारी उपलब्ध कराता है। वैज्ञानिकों का स्पष्ट मानना है कि आने वाले वर्षों में यह क्षेत्र पूरी तरह स्वतंत्र विज्ञान हो जायेगा इसके शोध क्षेत्र में देश-विदेश के शैक्षिक संस्थान हैं। दूसरी ओर उद्योग के क्षेत्र में औषधि कम्पनियां सक्रिय हैं। ये दोनों ही चीजें बायोइन्फार्मेटिक्स के लिए उज्ज्वल भविष्य की अपार संभावनाओं के दरवाजे खोल रहा है।

———————

नोकरेक जीवमण्डल–एक परिचय

एच. एस. देवनाथ एवं बसंत सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

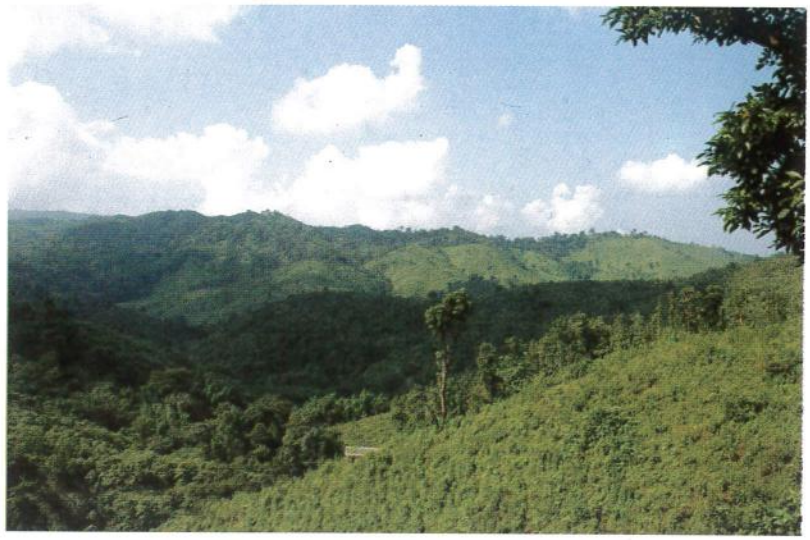

प्राकृतिक सुन्दरता की झांकी - नोकरेक जीवमण्डल

वर्तमान परिस्थिति में जहाँ एक तरफ मानव जगत उपलब्धियों की नई मिसाल कायम कर रहा है और दिन-प्रतिदिन उन्नति के शिखर की तरफ अग्रसर हो रहा है, वही दूसरी तरफ वह अपने पर्यावरण और अपनी धरती से काफी दूर आ चुका है। नतीजा एक-एक कर लुप्त होती प्रजातियाँ, बढ़ता प्राकृतिक असन्तुलन और बिगड़ता परिवेशतन्त्र और अगर भविष्य की तरफ देखें तो खतरे में पड़ता मानव अस्तित्व। हमारा वैज्ञानिक समाज काफी दिनों से इस प्राकृतिक असन्तुलन को लेकर चिन्तित रहा है और उन्होंने इसे ठीक करने के लिए हर सम्भव प्रयत्न भी किया है। इन्हीं प्रयत्नों की श्रृंखला में यूनेस्को ने (UNESCO) ने 1972 में Man and Biosphere के नाम से एक नया कार्यक्रम शुरु किया जिसके निम्नलिखित 3 मुख्य उद्देश्य थे–

नोकरेक जीवमण्डल की वनस्पति विविधिता - साइट्रस इण्डिका

1. जैव विविधता को उनके ही स्वाभाविक प्रकृति और परिवेश तंत्र में संरक्षित करना।
2. जीवमण्डल (Biosphere) में या उसके आसपास रह रहे मनुष्यों के आर्थिक विकास में सहयोग करना।
3. प्रकृति से जुड़ी शिक्षा, अनुसंधान, पर्यवेक्षण और प्रशिक्षण की सुविधाएं प्रदान करना।

इसी अभियान के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए पूरे विश्व के लगभग 102 देशों में कुल 482 जीव

नोकरेक जीवमण्डल में झूम कृषि

नोकरेक जीवमण्डल की वनस्पति विविधिता - फफूंद

मण्डल स्थापित किए गए और उनके संरक्षण और प्रबन्धन की व्यवस्था की गई। भारत में भी 13 ऐसे स्थान चुने गए हैं जिन्हें जीवमण्डल का दर्जा दिया गया है।

मेघालय का नोकरेक जीवमण्डल भी इन्हीं 13 जीवमण्डलों में से एक है जिसे 1988 में स्थापित किया गया। यह जीवमण्डल मेघालय के पश्चिम में तीन जिलों, पूर्वी गारो, पश्चिमी गारो और दक्षिणी गारो से मिलकर बना है। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह भले ही भारत का दूसरा सबसे छोटा जीवमण्डल हो (कुल क्षेत्रफल 820 वर्ग किमी०) लेकिन जैव विविधता और प्राकृतिक सुन्दरता की दृष्टि से यह बाकी सभी जीव मण्डलों से अलग है। तुरा पर्वतेश्रणियों पर स्थित नोकरेक, पूर्वी भारत में वन्य प्राणियों और उद्भिजों के लिए स्वर्ग है। अल्प चर्चित नोकरेक जीवमण्डल अपने आप में रहस्यों को समेटे हुए है।

नोकरेक जीवमण्डल की वनस्पति विविधता - बेलानोफोरा

अवलुप्तप्राय और विरल साइट्रस इण्डिका (Citrus indica) पूरे विश्व में केवल इसी जीवमण्डल में सीमाबद्ध है। अतएव यह जीवमण्डल साइट्रस इण्डिका के जीन भण्डार (Gene Pool) का काम कर रहा है। केवल साइट्रस ही नहीं बल्कि यहाँ और भी विभिन्न प्रजातियों के प्राणी और उद्भिज पाये जाते हैं। खासकर पक्षियों और तितलियों के लिए तो नोकरेक का जंगल काफी महत्वपूर्ण है।

प्राकृतिक सुन्दरता की झांकी - नोकरेक जीवमण्डल

दूसरी महत्वपूर्ण बात है, इस जीन मण्डल के कोर भाग (Core Zone) का बिल्कुल सुरक्षित होना। इसके कोर भाग में नोकरेक राष्ट्रीय उद्यान स्थित है और लगभग 47 वर्ग कि०मि०में फैला हुआ है। किसी भी जीवमण्डल का यह भाग काफी सुरक्षित माना जाता है और उसे मानवीय अतिक्रमण से दूर रखा जाता है। लेकिन नोकरेक की संरचना कुछ ऐसी है कि स्वयं ही यह मानवीय पहुंच के परे है। प्रकृति ने खुद इस विविधता के अनमोल खजाने को काफी संजो कर रखा है। यह उस भू-खण्ड का एक मात्र सुरक्षित स्थान है।

भोगोलिक रूप रेखा और जलवायु की दृष्टि से भी यह जीवमण्डल काफी महत्वपूर्ण है। 25°-20 से 25°-29 उत्तरी अक्षांश और 90°-13 से 90°-35 पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित नोकरेक जीवमण्डल की गारो

पर्वतश्रेणियाँ यहाँ की प्रमुख नदियों जैसे सिमसांग, गानोल, बुगी, डरेंग इत्यादि का उद्‌गम स्थल है। वनस्पतियों की बहुलता के पीछे यहाँ की जलवायु का भी काफी योगदान है। यहाँ का औसतन तापमान 20°C रहता है।

गारो पर्वत क्षेत्र यहाँ की मूल गारो प्रजाति का वास स्थान भी है। गारो के अलावे यहाँ कोचेस, रोभास, हजोगस, बानिआस इत्यादि प्रजाति के लोग भी रहते हैं। ये अपने को प्रकृति का अभिन्न अंग मानते हैं और अपनी जरूरतों के लिए पूरी तरह से यहाँ के जंगलों पर आश्रित हैं। जंगलों से इन्हें जलावन की लकडी, औषधि, फल, फूल, कन्द इत्यादि मिल जाते हैं। उचित प्रशिक्षण और शिक्षा के अभाव में यहाँ की प्रजातियों ने कुछ हद तक वन सम्पदा का हनन किया है। 'झूम कृषि' के चलते यहाँ के जंगल काफी प्रभावित हुये है। उपलब्ध आकड़ो के अनुसार नोकरेक जीवमण्डल के कुल 17% भाग में झूम कृषि का प्रचलन है और लगभग 85% परिवार इसी कृषि व्यवस्था पर निर्भर हैं।

दुर्गम रास्तों के चलते काफी कम लोग ही इसके भीतरी भागों तक पहुँच पाते हैं और शायद यही कारण है कि अब तक यहाँ अनुसंधान और पर्यवेक्षण का काम भी काफी सीमित स्तर तक हो पाया है। इस जीवमण्डल की देख रेख का दायित्व वन विभाग पर है। कुछ और सरकारी संस्थाएँ भी इस अंचल में सक्रिय हैं जो यहाँ के लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने का भरसक प्रयत्न किया है। भारत सरकार के पर्यावरण और वन मंत्रालय ने भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण को इस जीवमण्डल के "Lead institute" के रूप में चुना है। सुन्दरवन जीवमण्डल में सफलता पाने के बाद भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण अब इस जीवमण्डल को UNESCO के MAB-net शृंखला में शामिल करने में सकारात्मक रूप से लगा हुआ है। पहले चरण की सफलता के बाद अब दूसरे चरण का अभियान भी निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता के नेतृत्व में द्रुत गति से आगे बढ रहा है।

पहले चरण में नोकरेक में हुए अनुसंधान कार्यों का निरीक्षण और मूल्यांकण करने के बाद भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण ने काफी महत्वपूर्ण तथ्यों का खुलासा किया। इस जीवमण्डल और इसमें रह रहे लोगों के सामाजिक और अर्थनैतिक विकास के लिए कुछ महत्वपूर्ण उपाय भी सुझाये। पहले चरण के व्यौरे के अनुसार निम्नलिखित विषयों पर अनुसंधान की सख्त जरूरत है।

नोकरेक जीवमण्डल की वनस्पति विविधता - फफूंद

1. उस क्षेत्र की वन सम्पदा, उद्‌भिज, सिंचाई व्यवस्था
2. कृषि के लिए उपयुक्त पौधों का संग्रह और संरक्षण
3. वनस्पति वर्गो का सांख्यिक मूल्यांकन
4. विरल, अवलुप्तप्राय पौधों को चिह्नित करना
5. साइट्रस या उसके परिवर्तित रूपों का विस्तृत अध्ययन
6. आर्थिक, औषधीय, जलावन, लकड़ी और दूसरे घरेलु प्रयोगों के लिए उपलब्ध वन सम्पदा की जाँच करना।
7. जलावन की लकड़ी, चारा, कृषि और अन्य उपयोगों के लिए जीव मण्डल के जंगलों के हो रहे दोहन का सही-सही अनुमान
8. प्राणी सम्पदा की पहचान और मूल्यांकन
9. जंगलों पर मानवीय प्रभावों का मूल्यांकन
10. "Eco-tourism" का विकास
11. उस क्षेत्र की जलवायु, भू संरचना और भू-गर्भ

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के अतिरिक्त नार्थ इस्टर्न हिल विश्वविद्यालय (NEHU) नेश्नल व्यूरो ऑफ प्लान्ट जेनेटिक रिसोर्सेस (NBPGR) मेघालय तथा कुछ गैर सरकारी संस्थान (NGO) जैसे फेडरेसन ऑफ डेभलपमेन्ट इन्ट्रीगेशन (FDI) गुवाहाटी इत्यादि कुछ अन्य संस्थायें भी अनुसंधान कार्य में रत है।

जलवायु के अनुसार यहाँ की वनस्पतियों को मुख्यतः दो वर्गों में बांटा जा सकता हैं–

1. उष्ण कटिबन्धीय (Tropical), जिनका विस्तार समुद्रतल से 1000 मी. की ऊँचाई तक है।
2. उपोष्ण कटिबन्धीय (Subtropical) जिनका विस्तार समुद्रतल से 1200 मी. की ऊँचाई तक है।

यहाँ पाये जाने वाले सदाबहार, पतझड़, तृणभूमि, इत्यादि प्रकार के वनों में

1. साइट्रस इण्डिका (Citrus indica)
2. सोरिया रोबस्टा (Shorea robusta)
3. टरमिनेलिया बेलेरिका (Terminalia belerica)
4. एपोरूसा वालिच्वी (Aporusa wallichii)
5. क्रिप्टोकारिया एन्डरसोनी (Cryptocaria andersonii)
6. लेजरस्टोमिया पारभीफ्लोरा (Lagerstroemia parviflora)
7. डाइलेनिया पेन्टागाइरिया (Dillenia pentagyria))
8. लीआ मैक्रोफाइला (Leea macrophylla)
9. भाइटेक्स पेडन्कुलेरिस (Vitex peduncularis)
10. बुटिया मोनोस्पर्मा (Butea monosperma)
11. तुना सिलियाटा (Toona ciliata)

12. जिम्नोस्पोरा सेलिसीफोलिआ (Gymnospora salicifolia)
13. टरमिनेलिया चेबुला (Terminalia chebula)
14. होभेनिया एसेरा (Hovenia acera)
15. जिजाइफस रूगोसा (Zizyphus rugosa)
16. हिबिस्कस मैक्रोकार्पस (Hibiscus macrocarpus)
17. फाइकस प्रोस्ट्राटा (Ficus prostrata)
18. केप्पारिस जेयलेनिका (Capparis zeylanica)
19. बाउहिनिया एक्युमिनाटा (Bauhinia acuminata)
20. यूपेटोरियम एडिनोफोरम (Eupatorium adinophorum)
21. माइमोसा हिमालयाना (Mimosa himalayana)
22. कोस्टस स्पेसीज (Costus sp.)
23. बल्बोफाइलम स्पेसीज (Bulbophyllum sp.)
24. डेन्ड्रोबियम स्पेसीज (Dendrobium sp.)
25. भेन्डा स्पेसीज (Vanda sp.)
26. कोफिया बेंगलेंसिस (Coffea bengalensis)
27. क्रोमालिना ओडोराटा (Chromolaena adorata)
28. इम्पेरेटा सिलिन्ड्रिका (Impereta cylindrica))
29. केभिया फ्लोरीबन्डा (Kevia floribunda)
30. बेटुला क्युलिनड्रिस्टेकिस (Betula cylindristachys)
31. मेचिलस गेम्बेली (Machilus gamblei)
32. कारनिसिया पेनिकुलाटा (Carnicia paniculata)
33. एग्लाइआ रोक्सवार्गी (Aglaia roxburghii)
34. स्ट्रोबिलेन्थस ग्लोमेराटस (Strobilanthes glomeratus)
35. प्रेमना मल्टीफ्लोरा (Premna multiflora) आदि प्रमुख है।

यहाँ पाये जाने वाले जीव जन्तुओं में स्तनपायी वर्ग के मुख्य सदस्य–

1. हुलोक गिबन (Hoolock Gibbon),
2. रेसस मेकु (Rhesus Macaque)
3. स्लो लोरिस (Slow Loris)
4. कैप्ड मन्की (Capped Monkey)
5. बाघ (Tiger)
6. क्लोडेड बिल्ली (Clouded Cat)
7. लेपार्ड बिल्ली (Leopard Cat)
8. जंगल बिल्ली (Jungle Cat)

9. भारतीय लोमड़ी (Indian Fox)
10. जंगली कुत्ता (Wild Dog)
11. सुनहला लंगूर (Golden Langur)
12. तेन्दुआ (Leopard)
13. सुनहली बिल्ली (Golden Langur)
14. चीतल (Cheetal)
15. साम्बर (Sambar) हैं।

प्रमुख पक्षी

1. जंगल मैना (Jungle Mayna)
2. लाल पंखोवाली क्रस्टेट कोयल (Red Winged Crested Cuckoo)
3. लम्बी पूँछ वाला ब्रोडबिल (Long tailed-broad bill)
4. पीला बुलबुल (Yellow Bulbul)
5. तोता (Parrots)
6. पहाड़ी मैना (Hill Mayna)
7. लाल सिर वाला ट्रेगोन (Red Headed Tragon)
8. हरा मेगपाइ (Green Magpie)

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि मेघों की भूमि का यह छोटा सा भाग विभिन्न प्रकार के उद्भिजों और प्राणिओं से समृद्ध है और इस अमूल्य धरोहर को भविष्य के लिये सुरक्षित रखने की दिशामें भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के द्वारा उठाया गया एक छोटा किन्तु महत्वपूर्ण कदम भविष्य में मानव जाति की लम्बी उड़ान को सुनिश्चित करेगा।

———————

माल्दा जिला के जलाशयों में मखाना का पारिस्थितिकी अध्ययन एवं उपयोगिता

प्रतिभा गुप्ता एवं शिव कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण,कोलकाता

नील-हरित एवं प्लवक (फाइटोप्लेंक्टान) शैवालों के वनस्पतिक सर्वेक्षण के दौरान माल्दा जिला में अवस्थित 50 से अधिक जलाशयों(जैसे–झील, बिल, तालाब, आदि) में से 12 जलाशयों में मखाना के पौधों को पाया गया (चित्र 1)। उत्सुकतावश इस पौधे के बारे में विस्तृत जानकारी स्वयं के अध्ययन, स्थानीय लोगों, प्रकाशित शोध पत्रों तथा पुस्तकों से प्राप्त हुई। सन् 1998 में सर्वप्रथम मखाना के बीजों को बिहार राज्य के दरभंगा जिला से लाकर हरिश्चन्द्रपुर खण्ड के जलाशयों में प्रायोगिक तौर पर उगाया गया। तदोपरान्त लोगों ने इसके महत्व एवं उपयोगिता को जाना तथा इससे होने वाले अत्यधिक अर्थ-लाभ की दृष्टि से इसे स्वयं या राज्य सरकार की सहायता से जिला के अन्य खण्डों में भी उगाया जाने लगा तथा आने वाले समय में इसकी वृहत पैमान पर खेती की संभावना व्यक्त की गयी। किन्तु चिन्ता का विषय यह है कि अगर यह रफतार इसी तरह बढ़ती गयी तो आने वाले समय में जलाशयों में प्राकृतिक रूप से उपस्थित जलीय जीवों (पादप एवं जन्तु) की सघनता एवं विविधता लगातार क्षीण होने की संभावना है। इसलिए ऐसे जलाशयों का संरक्षण आज के परिवेश में अति आवश्यक हैं।

प्राकृतिक रूप से मखाना अल्प समय तक रहने वाला बहु वार्षिक जलीय शाक (पादप या पौधा) है। किन्तु कृषि कार्य एवं व्यवसायिक स्तर पर यह एक वार्षिक पौधा है। यह निम्फिएसी कुल का सदस्य है। सर्वप्रथम ब्रिटिश वनस्पतिक विशेषज्ञ सालिसबरीने इस जलीय पौधे का वनस्पतिक नाम ''एउरिआले फेरोक्स'' दिया। साधारणत : अंग्रेजी में इसे ''फाक्स-नट'' या ''गारगन'' तथा हिन्दी, असमिया, बंगाली में ''मखाना'' एवं कश्मीरी उड़िया में क्रमशः ''श्री यू-उ-पक्न'' तथा ''कुन्ता-पद्मा'' के नाम से प्रचलित है। इसे विक्टोरिया पौधे का प्रथम करीबी सम्बंधी भी कहा जाता है।यह इस वंश की एक मात्र जाति है। इसलिए इसे एकल प्ररूपी कहते है।

मखाना का पूरा पौधा विशालकाय, पत्तियों के दोनों सतहों, बृंत, कली, वृंतक, पुष्प तथा फल दृढ़ काटों से आच्छादित होते है (छायाचित्र 2 एवं 3) परिपक्व बीज गाढे भूरे रंग का होता है (छायाचित्र 4) जिसे भूनने के बाद सफेद चमकीला बीज की तुलना में बड़े आकार का लावा प्राप्त होता है (छायाचित्र 5)।

माल्दा जिला के विभिन्न जलाशयों में मखाना (पौधों) की प्रतिशत उपस्थिति को अधोलिखित तालिका में दर्शाया गया है।

क्रम संख्या	जलाशयों के नाम	मोजा	खण्ड	मखाना (पौधों) की उपस्थिति (%)
1.	दामुआ तालाब	कोनार	हरिश्चन्द्रपुर - 1	80
2.	अधसोई बिल	पचला, पीराजपुर	हरिश्चन्द्रपुर - 1	70
3.	असीडोब बिल	उत्तर हरिश्चन्द्रपुर	हरिश्चन्द्रपुर - 1	100
4.	हजारतकिया बिल	पीराजपुर	हरिश्चन्द्रपुर - 1	80

5.	मिठना बिल	तलसुर	हरिश्चन्द्रपुर - 2	70
6.	जानीपुकुर बिल	सेरपुर	हरिश्चन्द्रपुर - 1	90
7.	मन्ना विल	भालुका	हरिश्चन्द्रपुर - 2	80
8.	बोचामारी बिल	बोवालिया	चांचल - 2	60
9.	सिंगरा बिल	गंगा देवी	चांचल - 2	30
10.	सिंगर बिल	कोरचाडांगा	गाजोल	90
11.	कुचला बिल	एकलक्खी	गाजोल	80
12.	हटिया बिल	हटिया	गाजोल	40

मखाना के पौधों की उपस्थिति सबसे अधिक हरिश्चन्द्रपुर खण्ड के सात जलाशयों में पायी गयी। इसमें से सबसे अधिक (100 प्रतिशत) मखाना के पौधों की उपस्थिति हरिश्चन्द्रपुर के ही जलाशय असीडोब बिल, उत्तर, हरिश्चन्द्रपुर एवं न्यूनतम (30 प्रतिशत) सिंगरा बिल, गंगा देवी, चाँचल -२ में दर्ज की गयी।

मखाना की उपयोगिता :

क) धार्मिक कार्यों में

मखाना एक पवित्र जलीय खादय है इसे देवताओं को भोग के रूप में अर्पित करते हैं तथा ब्रतधारी भी इसको खाते हैं। धार्मिक अनुष्ठानों, शादी-विवाह से लेकर श्राद्ध में इसका प्रयोग किया जाता है। पूजा में मखाना को पंचमेवा, चरणामृत पंजीरी, हवन सामग्री (शाकल्य), पकवान, मिष्ठान, प्रसाद, इत्यादि सामग्रियों को तैयार करने में किया जाता है। ब्रतधारी इसे भूनकर,साबुत या चूर्ण (मखाना के लावा का), खीर बनाकर या दूध के साथ अल्पाहार एवं स्वल्पाहार के रूप में ग्रहण करते हैं।

(ख) आहार एवं खाद्य व्यंजनों में

बच्चों के पोषण के लिए यह एक सुपाच्य, पौष्टिक एवं संतुलित आहार है। मखाना से विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन तैयार किये जाते हैं,जैसे–

(i) शाकाहारी व्यंजन में – भुना हुआ लवणयुक्त (नमकीन) मखाना, मशरूम-पनीर-मखाना करी, नवरतन मखाना कोरमा पेशावरी मखाना कोरमा मटर-मखाना, सलाद, इत्यादि।

(ii) मांसाहारी व्यंजन में – जैसे मुर्ग -मुसल्लम का रसा (करी) तैयार करने एवं अन्य व्यंजनोंमें अन्य तरीके से व्यवहार किया जाता है।

औषधीय गुण एवं रोगोपचार में उपयोग :

मखाना का उपयोग प्राचीनकाल से आयुर्वेद में बहुत से रोगों के उपचार हेतु औषधि के रूप में होता आ रहा है। वैज्ञानिक अनुसंधान के उपरान्त प्राप्त जानकारी के अनुसार यह निम्नलिखित रोगों के उपचार में लाभकारी है।

(i) यह बहुत ही शक्तिशाली प्रति-आक्सीकारक एवं कैंसर प्रतिरोधी है।
(ii) इसका कोई अतिरिक्त प्रभाव नहीं है।
(iii) शारीरिक एवं पृष्ठ वेदना/पीड़ा नाशक है।
(iv) हृदय की कार्य क्षमता की कमी को सुधारता है।

(v) प्लीहा एवं वृक्क को सक्रिय करता है।
(vi) वृक्कों की क्रियाशीलता में शिथिलता के कारण बहुमूत्रता एवं जलोदर के उपचार में प्रयोग किया जाता है।
(vii) प्रदर रोग में अत्यंन्त लाभकारी है।
(viii) कफ निस्तारक एवं वमन नियंत्रक है।
(ix) ज्वर एवं पुराने अतिसार को ठीक करता है।
(x) सुजाक, हार्निया, तंत्रिका बंध में लाभकारी है।
(xi) बीजांडासन की कार्यक्षमता को बढ़ाता है।
(xii) यह शीघ्र वीर्य स्खलन को नियंत्रित करता है एवं स्वप्न दोष रोग के निदान में लाभकारी है।
(xiii) पुरुषों में यह कामोद्दीपन (कामुकता), शुक्रजनक क्षमता को बढ़ाता है तथा नपुंसकता को दूर करता है।

पारिस्थितिकी एवं आर्थिक प्रभाव :

* मखाना की पत्तियों के बड़े आकार एवं जलीय क्षेत्र में फैलाव (छायाचित्र-2) के कारण अत्यधिक वाष्पीकरण होने से जलाशयों का जल स्तर शीघ्र नीचे आ जाता है इसलिए जलाशयों में केवल मखाना की खेती परिस्थितिकी तंत्र के लिए हानिकारक है। इन जलाशयों में यदि जलस्तर शीघ्रातिशीघ्र पुनःस्थापित नहीं होता तो पैदावार प्रभावित होती है।
* इसकी पत्तियों का बड़ा आकार एवं उनकी सघनता से विकसित होना जलाशयों के अधिकतम जल क्षेत्रों में सूर्य का प्रकाश तथा हवा को विभिन्न जलस्तरों तक नहीं पहुँचने देता हैं जिसके दुष्प्रभाव से जलाशयों के जल की गुणवता तथा जलीय जीवों (पादप एवं जन्तु) की सघनता एवं विविधता में लगातार ह्रास।
* जलाशय में विभिन्न प्रकार के अपतृण (घासपात) तथा प्रत्येक वर्ष पौधे के विघटितगाद (मिट्टी) के जमा होने के कारण जलाशयों में जलीय भाग तथा जल स्तर में कमी से जीवों पर प्रभाव एवं पैदावार में कमी (छायाचित्र 1)।
* विभिन्न प्रकार के शैवालों की उतपन्नता से पैदावार में कमी।
* पौधों में पादप रोग तथा कीट (एफिड) के प्रकोप तथा समय पर इसका निवारण नहीं होने से पैदावार पर प्रभाव।

मखाना की पैदावार के लिए विशेष रूप से जलाशयों का निर्माण किया जाना चाहिए जिससे प्राकृतिक जलाशयों की परिस्थितिकी प्रभावित न हो।

———————

खिरकंद एक औषधपयोगी पौधा

एम जे कोठारी,वी.पी.प्रसाद एवं पी. एस. एन. राव,
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पुणे

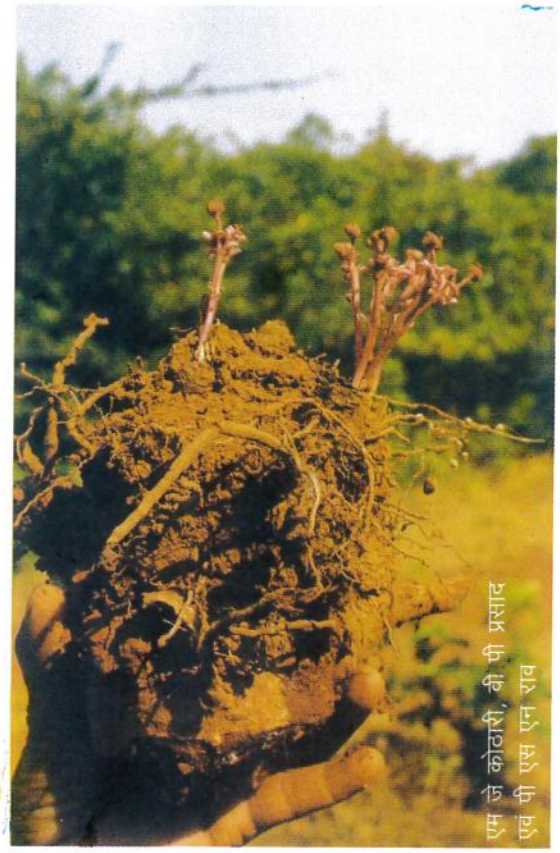

खिरकंद एक औषधोपयोगी पौधा

शिंबीकुल में दुर्लभ संकटग्रस्त पौधों को इकटटा कर उनके संरक्षण हेतु बनाई गई परियोजना के अंतर्गत यूफोर्बिएसी कुल का एक औषधोपयोगी पौधा खिरकंद जिसको लाटीन भाषा में युफोर्बिआ पांचगनिएन्सिस नाम से जाना जाता है, श्री क्षेत्र महाबलेश्वर के आरक्षितवनक्षेत्र में पाया गया। यूफोर्बिएसी कुल की युर्फोबिआ प्रजाति की विश्वमें 1250 और भारत में 82 जातियाँ पाई जाती है। जबकि महाराष्ट्र में इसकी कीरब 30 जातियाँ पाई गई,। ब्लैटर और मेकेन्न वैज्ञानिकों द्वारा खोजे गये इस रसप्रद पौधे का वर्णन, प्राप्ति स्थान, पुष्पकाल एवं उपयोग संम्बधी जानकारी निम्नलिखित है–

वर्णन : इस कंद युक्त, 5-8 सेंटिमिटर उँचाईवाले विषारी मांसल पौधे के पत्ते 4-5, स्तभीदिर्घ लंबगोलआकार के, अंदडी व पर्ण लहर युक्त है। पुष्प छोटे लाल या गुलाबी रंग के त्रिखंडीय बीजाशयवाले, पुष्प दंड युक्त, द्विशाखित परिमित पुष्पविन्यास में रहते है। पुष्प पत्र 2, जाबली, लेन्स आकार के, फल स्फोटी। बीज 3, गोलाकार।

पुष्प व फल काल : फरवरी से मई।

प्राप्तिस्थल : यह महाराष्ट्र के रत्नागिरी, सिन्धुदूर्ग एवं सातारा जिलों में पंचगनी एवं महाबलेश्वर के घास के मैदानोमें सामान्य रूप से पाया जाता है।

उपयोग : इस पौधे का दूध एवं कंद को पीसकर या घिसकर संधिवात में एवं शरीर के दुखःते / दर्दवाले भागोमें लगाने से दर्द से आराम मिलता है। स्थानिक लोग इसका उपयोग अधिक मात्रा में संधिवात की दवा हेतु करते है।

संरक्षण : खिरकंद जैसे पौधों का औषधि निर्माण व अन्य उपयोग के कारण प्रकृतिवासों में अधिक मात्रा में दोहन न हो उस दृष्टि से उनके स्व' स्थान (इन सिटू) संरक्षण के लिये पश्चिम घाट के महाबलेश्वर जैसे टूरिस्ट स्थानों में बढ़ते हुये जैविक दबाव पर नियंत्रण हेतु ठोस कारवाई की जानी चाहिये साथ ही परस्थान (एकस सिटू) संरक्षण के लिये उन्हे वानस्पतिक उद्यानो में लगाकर संरक्षण व संवर्धन करना चाहीये। संरक्षण की दृष्टि से कुछ कंद महाबलेश्वर से लाकर भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के मुंढवा स्थित प्रायोगिक उद्यान में लगाये गये थे जो अब विकसित होकर पौधों के रूपमें विद्यामान हैं।

———————

हमारी रंगीन वनस्पति सम्पदा

हरीश सिंह 'भुजवान'
केन्द्रीय वनस्पति प्रयोगशाला,हावड़ा

इस धरातल में रंगो की अपनी एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रकृति को सुन्दर बनाये रखने में रंग विशेष सहयोग प्रदान करते हैं। मनुष्य भी अपने को आकर्षक एवं खुशनुमा बनाने के लिये रंगो का अनेक प्रकार से उपयोग करता है। रंगो का प्रयोग मुख्य रूप से सूंती, ऊनी व रेशमी कपड़ों को रंगने, औषधियों, खाद्य व पेय पदार्थो को सुन्दर व आकर्षक बनाने, घर एवं घरेलू वस्तुओं को सजाने तथा सौन्दर्य प्रसाधन बनाने आदि में किया जाता है। रंगो का उपयोग सर्वप्रथम इजिप्ट के मकबरों को रंगने में किया गया था। सोलवीं से अठारवीं सदी में डच एवं ब्रिटिश व्यापारियों ने रंगो को यूरोप के बाजारों में उपलब्ध करवाया। रंग मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं : १. कृत्रिम रंग तथा २. प्राकृतिक रंग। सर हेनरी पेरकिन ने सबसे पहले रंगीन कोलतार 'मौबीन' की खोंज की, जिसके फलस्वरूप कृत्रिम रंगो का प्रचलन बढ़ने लगा व प्राकृतिक रंगो का प्रचलन धीरे धीरे कम होने लगा। पिछले पचास वर्षो से कृत्रिम रंगो के अधिक उपयोग व उनके विषैले रासायनिक गुणों के कारण मनुष्य के शरीर में क्ई प्रकार की व्याधि व विकृतियों ने जन्म लिया है। खाद्य, पेय, औषधि व वस्त्रों में कृत्रिम रंगो के प्रयोग से एलर्जी, केन्सर, पाचक रोग, दमा जैसे क्ई बिमारियों को बढ़ावा मिला है। हम लोग इस 'फास्ट फूड' के युग में अजी-नो-मोटो (Monosodium Glutamate) जैसे रासायनिक पदार्थो का 'न्यूडल्स' बनाने मे उपयोग कर दमा, डिप्रेशन, सिर दर्द व हृदय रोगों का शिकार होते जा रहे हैं। बहुत से नुकसान दायक कृत्रिम रंगो का उपयोग आज भी आइसक्रीम, मिठाई व पेय पदार्थोमें धड़ल्ले से किया जा रहा है। खाद्य पदार्थों में ०.१ ग्राम / कि.ग्राम से कम कृत्रिम रंग जैसे अमेरेन्ट, इरिथ्रोसीन, फास्ट ग्रीन, इन्डिगोटिन, सनसेट येलो, इन्डिगों कारमाइन, टारट्राजीन तथा ब्रिलेन्ट ब्लू ही वैध है किन्तु व्यापारियों द्वारा खाद्य व वस्त्रों को अधिक मनमोहक, आकर्षक व सुन्दर बनाकर अधिक मुनाफा कमाने के चक्कर में इनका मानक से अधिक मात्रा में उपयोग करना आम बात हो गई है। कृत्रिम रंग में रंगने की क्षमता, घुलने की क्षमता, जीवन काल, गर्मी व रोशनी का प्रभाव, अम्ल रोधकता व ब्लीचींग की क्षमता प्राकृतिक रंगों से अधिक होने के कारण भी व्यवसायी लोग इनका प्रयोग प्राय कर रहे है। इनके विषैले प्रभाव के कारण ही सभी विकसित एवं विकासशील देशों में खाद्य, पेय, सौन्दर्य सोमग्री व औषधियों में कृत्रिम रंगो के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगा दिया है।

दूसरी ओर प्राकृतिक रंग शरीर व स्वास्थ्य के लिये नुकसानदायक न होने के साथ-साथ सस्ता, एन्टी-एलर्जिक, मनमोहक, कीट अवरोधक, इको-फ्रेन्डली, प्रदूषण रहित, विष रहित व बायो-डिग्रेडेबल होता है। इसलिये मानव जाति एक बार पुनः प्राकृतिक रंगो की ओर खींची चली आ रही है। प्राकृतिक रंग मुख्यतः जीव-जन्तुओं, खनिज पदार्थों एवं वनस्पतियों से प्राप्त किया जाता है। वनस्पतियों से प्राप्त किये जाने वाले रंग को वर्तमान में 'हर्बल-रंग' के नाम से भी बाजार में बेचा जा रहा है। वनस्पतियों से प्राप्त प्राकृतिक रंगो जैसे एन्नेटो, सेफ्रोन व टर्मेरिक को वर्षो से खाद्य पदार्थो में उनके विष-रहित गुण के कारण ही उपयोग किया जा रहा है। भारत वर्ष में खाद्य एवं मिलावट अधिनियम १९५४ के अनुसार खाद्यपदार्थो मे निम्न प्राकृतिक रंगो के उपयोग की अनुज्ञा दी गयी हैः जैसे एन्नेटो-सत एवं बीटा केरोटिन को पनीर व कृत्रिम मक्खन में, बीटा-एपो-८-केरोटिनल को गूदा एवं छिलके वाले सिट्रस फलों में, मिथाइल एस्टर ऑफ बीटा-८ केरोटिनोइक अम्ल को खाने योग्य वसा व तेल में, केन्थाजोन्थिन को खाने वाले मशरूम में, केरामल को कार्बोहाइड्रेट, शुगर, स्टार्च में, कुर्कुमिन को हल्दी में तथा क्रोकस सेटैवस को केशर में उपयोग किया जा सकता है।

भारत वर्ष को वनस्पति सम्पदा का भंडार माना जाता है जो विश्व के १२ वृहत-विविधता केन्द्र में से एक है। हमारे देश में रंगो के प्रचुर प्राकृतिक श्रोत उपलब्ध होने के कारण रंग व रंगीन वस्तुओं का उपयोग निरन्तर किया जाता रहा है। औषधि, खाद्य, रेशो, चारा, ईधन आदि के अतिरिक्त भारत वर्ष में बहुत सी रंग देने वाली वनस्पतियां पाई जाती है। अतः इस लेख में इन रंगीन वनस्पतियों की प्रचलन / उपयोग के आधार पर मुख्य रूप से तीन वर्गो में विभक्त कर सरल ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है :

१. **रंग देने वाली बहु-प्रचलित वनस्पतियां–** हमारे देश की कुछ रंग देने वाली वनस्पतियों का उपयोग व्यवसायिक रूप से प्राय / बहुधा किये जाने के कारण इनकी जानकारी अधिकतर जनमानस को है जिनमें से अकेशिया कटेचू से कत्था (लाल व भूरा), मेलोटस फिलिपेन्सिस से कमेला (गहरा नारंगी), बीकसा ओरेलाना से एन्नेटो (लाल तथा नारंगी), ब्यूटिया मोनोस्पर्मा से ब्यूटिन (पीला), कुरकुमा लोंगा से टर्मेरिक (पीला), हीमेटोजाइलोन केम्पेचिएनम से हीमेटोजाइलिन, क्रोकस सेटाइवस से सेफ्रोन (केसरिया), स्पाइनेशिया ओलिरेशिया से क्लोरोफिल (हरा), डौकस केरोटा से केरोटिन (नारंगी), लाइकेन स्पी० से लिटमस, लावसोनिया इनरमिस से हेना (लाल), इन्डिगोफेरा टिंक्टोरिया से इन्डिगों (नीला), केमेलिया साइनेन्सिस से भूरा, सेन्टेलम एलबम से चन्दन (पीला), सेमीकार्पस एनाकार्डियम से काला तथा सीजिजीयम कुमिनी से लाल रंग निकाला जाता हैं।

२. **सामान्य रूप से प्रचलित रंग देने वाली वनस्पतियां** – इस वर्ग के अन्तर्गत उन रंग देने वाली वनस्पति जात का वर्णन किया जा रहा है जिनका उल्लेख उपलब्ध साहित्य के अलावा रंग से जुड़े व्यवसाय करने वाले लोग तथा उनके प्राप्ति स्थान के आस पास वाले लोगों को जानकारी है।

भूरे रंग की प्राप्ति के लिए अकेशिया फारनेशियाना की छाल व फूल, अ० पिन्नेटा की छाल, एल्बीजीया लेबेक की छाल, ए० ओडोरेटिसिमा की छाल, एलनस नीटिडा की छाल, एल्यूराइट्स मोलुकाना की जड़, वौहिनीया वेरिगाटा की छाल, ब्राइडेलिया रिटूसा की छाल, सीजलपीनिया डीकेपीटेला की छाल, केशिया फिस्टुला की छाल, के० ओक्सिडेन्टेलिस की फली, के० टोरा की फली, केसूरिना इक्वीसीटिफोलिया की छाल, डलबर्जीया लेन्सियोलेरिस की छाल,जेट्रोफा कुरकस की रस, जुगलेन्स रीजिया की छाल, माइमूसोप्स एलेन्गी की छाल, ओरोजाइलम इन्डिकम की फली, फाइलेन्थस इम्बिलिका का फल, प्रुनस पर्सिका की जड़ की छाल, सार्कोक्लेमिस पलचेरिमा की पत्ती व टहनी, टर्मिनेलिया छिबुला के फल, ट्रेमा ओरिन्टेलिस की छाल तथा जिजिफस नुमुलेरिया के फल का प्रयोग किया जाता है।

पीले रंग के लिए मुख्यतः एगल मारमेलोस के फल के छिलके, आटोकारपस हेटेरोफिलस की अन्तः काष्ट, आ० लाकुचा की जड़, एजाडिरेक्टा इन्डिका के बीज का तेल, बेरबेरिस स्पी० की काष्ठ व जड़, ब्यूटिया सुपर्बा के फूल, कार्थेमस ओक्सिकेन्था के फूल, केशिया टोराके बीज, कुड्रानिया जेवेनेन्सिस की लकड़ी, यूनीमस टिनजेन्स की छाल, इरिथ्रीना सबरोसा की छाल, फाइकस रीलीजिओसा की पत्ती, गोसिपियम हर्बेसियम के फूल, हेलिएन्थस एनस के फूल, जेसमिनम हूमाइल के फूल,जूनिपेरस कोमुनिस की जड़, माइरिका इस्कुलेन्टा की छाल, माइचिलीया चम्पाका के फूल, मोरिन्डा सिट्रीफोलिया की जड़, मो० अम्बीलेटा की जड़, निक्टेन्थस आरबोरट्रीसटिस के फूल, पिथिसिलोबियम डल्स की छाल, पूनिका ग्रानेटम के फल की छाल, सीसेमम इन्डिकम के बीज का तेल, सिम्पलोकस पेनिकुलेटा व सि० चाइनेन्सिस की छाल व पत्ती, टेजिटस इरेक्टा व पटूला के फूल, टेमेरिन्डस इन्डिका की पत्ती, टेक्टोना ग्रेन्डिस की काष्ठ व पत्ती, टर्मिनेलिया छिबूला के फल, ट० सीट्रिना की छाल, थेसपेसिया पोपुलनिया के फूल व फल, वुडफोर्डिया फ्रूटिकोसा की पत्ती तथा जिरोम्फिस स्पाइनोसा के फल का प्रयोग किया जाता है।

लाल रंग की प्राप्ति के लिये प्रायः अकेशिया ल्यूकोसिफेला की छाल व पत्ती, अक्टिया स्पीकेटा वेरा०

एक्यूमिनेटा के बीज, आर्नेबिया बेन्थामी की जड़, एजाडिरेक्टा इन्डिका की छाल, बेन्थामीडिया केपिटेटा की छाल, बीटा वलगेरिस की जड़ व पत्ती, बिस्चोफिया जेवेनिका की छाल, ब्यूटिया सुपर्बा की जड़, सिजेल्पिनिया के फल, कार्थेमस टिक्टोरियस के फूलों की पंखुड़ी केशिया टोरा के बीज, सेरिओप्स टागल की छाल, एरिथ्रेना वेरिगेटा के फूल, इम्पेशियन्स बालसामिना के फूल, आइफीजीनिया इन्डिका के फूल, मेनिलकारा लिट्टोरेलिस की छाल, मोरिन्डा सीट्रिफोलिया व मो अम्बीलेटा की जड़, निक्टेन्थस आरबोरट्रीसटिस के फूल की पंखुड़ी, टेरोकारपस मारसूपियम की छाल, टे० सेन्टेलाइनस की काष्ट, पूनिका ग्रेनेटम के फल की छाल, रेहमनस पेन्टापोमिका की छाल, रूबिया कोर्डिफोलिया व रू०टिंक्टोरिया की जड़, टेक्टोना ग्रेन्डिस की पत्ती, टूना सीलिएटा के फूल, बेन्टिलागो मड्रास पटना की जड़, वुडफोर्डिया फ्रुटिकोसा के फूल आदि का प्रयोग किया जाता है।

काले रंग के लिए अकेशिया निलोटिका की फली, एन्नोना रेटिकुलेटा के कच्चे फल, एनोजिसस लेटिफोलिया की पत्ती, डायोसपाइरस पेरीग्रीना के फल, एकलिप्टा एल्वा की पत्ती, फाइकस रेसिमोसा की छाल, गार्सेनिया मेन्गोस्टानाके फल की छाल, हिबिस्कस रोसा-साइनेन्सिस के फूल की पंखुड़ी, हेलियोट्रोपियम स्ट्रीगोसम की पत्ती, फाइलेन्थस इम्बलिका की पत्ती व छाल, साइडियम गुआवा की छाल, राउलफिया टेट्राफिला के फल, सेपियम सेबीफेरम की पत्ती, सिकुरिन्गा विरोसा की छाल, टर्मिनेलिया बेलिरिका के फल, ट० कटप्पा की छाल व फ्ल आदि का प्रयोग किया जाता है।

हरे रंग के लिए अक्टिया स्पीटेका वेरा० एक्युमिनेटा की जड़, फाइकस रीलिजिओसा की छाल, हाइमेनोडिक्टियोन एक्सेल्सम की पत्ती, प्रेग्माइट्रस कारका के फूल, चीलिचेरा ओलिओसा के फूल तथा स्वेरसिया चिरायता का पौधा आदि का प्रयोग किया जाता है। नीले रंग के लिये एन्नोना रेटिकुलेटा की पत्ती, केशिया टोरा की फली व बीज, क्लीटोरिया टरटेनिया, गोसिपियम हर्बेसियम के बीज, जिनीमा टिन्जेन्स की पत्ती, मोरिंगा ओलीफेरा की काष्ठ, पोलिगोनम एविकुलेरी का पौधा, प्रिंसपिया यूटिलिस के फल को प्रयुक्त करते है। बैगनी रंग के लिए बेसिला अल्बा के पके फल, गेलियम अपेरिन तथा गे० क्रीप्टेन्थम की जड़, हिबिस्कस रोसा साइनेन्सिस के फूल, मोरिन्डा सिट्रीफोलिया की जड़ तथा नारंगी रंग के लिए डेलोनिक्स रीजिया के फूल, इम्पेसियन्स बालसमिनाके फूल, निक्टेन्थस आरबोरट्रीसटिस के फूल, प्लेम्बेगो इन्दिका की जड़ एवं गुलाबी रंग के लिए जिजिफस मोरिसियाना के पत्ती का प्रयोग करते है।

३. **अल्प प्रचलित रंग देने वाली वनस्पतियां** – इस श्रेणी में उन रंग देने वाली वनस्पतियों को रखा गया है जिनका वर्णन सामान्यतः किसी साहित्य में नहीं मिलता है और जिनकी जानकारी साधारण जनमानस को भी नहीं है। इस प्रकार के पौधों की जानकारी व उपयोग सिर्फ कुछ जनजातियों व सुदूरवर्ति क्षेत्र के लोगों को ही है। इसमें से एम्पीलोसीसस लेटिफोलिया की जड़ से काला, इहरेसिया लेविस की अन्तः छाल में लाल, पेरिस्टोफी बाईकेलिकुलटा के पौध से हरा तथा शोरिया रोबुस्टा की छाल से काला रंग निकालकर चारपाइयों की रस्सी, टोकरियां तथा घर की दिवारों को रंगा जाता है।

———————

''अंडमान एवं निकोबार द्वीपों में भूकंप व सुनामी लहरों का वनस्पतियों पर प्रभाव''

श्रीमती जी एस लकडा एवं पी जी दिवाकर
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पोर्ट ब्लेयर।

पर्यावरण असंतुलन से पूरी पृथ्वी त्रस्त है। उसके कहर से पृथ्वी के सभी घटक, वनस्पति, जीव और मानव प्रभावित हुए है। यह पर्यावरण की समस्या आज एक विकराल रूप धारण कर चुकी है और अजनबी ढंग से फूट रही है, जिसके विनाशकारी परिणामो के विषय में कभी सोचा – विचारा नही गया था।

अंडमान - निकोबार तथा दक्षिण भारतीय तटीय क्षेत्रों मे 26 दिसंबर 2004 को विध्वंसकारी भूकंप व सुनामी का आना, 29 अगस्त, 2005 को अमेरिका के समुद्री तटीय क्षेत्रों में शक्तिशाली समुद्री तूफान ''केटरीना'' का आना तथा अभी अभी ''रीटा'' जैसे समुद्री तुफानों से मची तबाही ने दिलों को दहला कर रख दिया है। इसके प्रभाव ने अंडमान निकोबार द्वीप समूह का तो भौगोलिक स्वरूप व परिस्थितिकी ही बदल दी है। अंडमान निकोबार द्वीप खण्ड अपने अक्ष से आंशिक रूप से खिसक सा गया है, उसके परिणाम स्वरूप इस द्वीप का दक्षिणी तटीय क्षेत्र करीब 5.25 मीटर पानी में डूब गया है, जबकि द्वीप का उत्तरीक्षेत्र 10-30 मीटर तक पानी सतह से उपर उठ गया है। भौगोलिक दृष्टि से माना गया है कि अंडमान द्वीप समूह अराकानयोमा पर्वत मालाओं का दक्षिणी तथा निकोबार द्वीप सुमात्रान पर्वत मालाओं का उत्तरी विस्तार है, जिसका अधिकांश भाग आज समुद्र में डूब चुका है। यहाँ की मिट्टी भुरभुरी है तथा उसकी जल व आर्द्रता धारण क्षमता भी बहुत कम है। पहाड़ी वन वाले क्षत्रों में लाल-भूरी तथा खाडी क्षेत्रों में बालुई चिकनी मिट्टी पायी जाती है। निरंतर वर्षा के कारण मिट्टी की उपरी सतह, जिसमें उपयोगी ह्यूमस होता है, काफी मात्रा में बह जाती है।

इन द्वीप समूहों का भूमध्य - रेखाके निकट स्थित होने के कारण यहां की जलवायु आमतौर पर गर्म तथा अधिक नम होती है और औसत तापमान 22° - 35° से. तक रहता है। यहॉ की औसत वर्षा 300-380 से. मी. एवं सापेक्ष आर्द्रता 80% तक रहती है। सुनामी द्वारा उठी समुद्री लहरों की उँचाई व रफ्तार भी इतनी अधिक थी कि समुद्र के तटवर्ती क्षेत्रों की वनस्पतियां प्रभावित हुए बिना नही रही। समुद्री किनारों की वनस्पतियों के साथ उंचे-उंचे वृक्ष तक धराशायी हो गए। इस संदर्भ में पर्यावरण विशेषज्ञों की आशंका है कि ''ग्लोबल वार्मिंग'' से समुद्र गरम होने लगे है, इसके कारण उठने वाली चक्रवाती हवाओ, समुद्री तथा मैदानी तूफानों का वेग और शक्तिशाली हो गया है। इस स्थिति को सबसे पहले केरिबियन, अमेरिका के पश्चिमी तटीय क्षेत्र और जापान जैसे पैसिफीक देशों में देखा गया है। इन क्षेत्रों में उठने वाली लहरों की तीव्रता बढ़ रही है और वे अपेक्षाकृत अधिक विध्वंसक होती जा रही है।

जानीमानी पत्रिका 'नेचर' में प्रकाशित एक लेख में ये प्रश्न उठाया गया है कि पर्यावरण और प्रकृति का वर्तमान रौद्ररूप प्राकृतिक है या मनुष्यकृत? इस प्रश्न से विश्व के वैज्ञानिकों के बीच एक रोचक चर्चा चल पड़ी है। भूगर्भविद् वैज्ञानिकों का कहना है सुनामी लहरे वास्तव में समुद्र में उठने वाली विध्वंसक ज्वारीय लहरे होती है, जिसकी रफ्तार 750 कि. मीटर प्रति घंटे तक होती है, और ये समुद्र में 6.5 तीव्रता से अधिक का भूकंप आने पर ही पैदा होती है। ये लहरें समुद्र के किनारों पर पहुंच कर, 12 से 30 मीटर तक ऊँची हो जाती है। 26 दिसंबर 2004 को उठी समुद्री तूफानी लहरों से अंडमान - निकोबार द्वीप समूह के जन-जीवन काफी प्रभावित हुआ है, जिसकी क्षति पूर्ति नही की जा सकती है। वनस्पतियों का क्षतिग्रस्त होना तो स्वाभाविक ही है। इस द्वीप समूह में सुनामी-लहरों व भूकंप का वनस्पतियों पर प्रभाव समझने के लिये चार प्रमुख वनस्पति खंडों में रखना

सुनामी से पहले तटों की वनस्पतियाँ

उपयुक्त होगा :–

१. **समुद्रतटीय वनस्पति :** इस खंड की वनस्पतियों को पुनः चार वर्गो में रखा जा सकता है –

क) **जलमग्न वनस्पति :–** यह पानी के अंदर डूबी या समुद्री जल के उपर तैरती वनस्पतियाँ हैं जो द्वीपों के चारो ओर छिछले समुद्री पानी में उगी होती है। जैसे समुद्री शैवाल तथा समुद्री घास। शैवालों में प्रमुख है :*एन्टोरोमार्फा, अल्वा, एस्टाबुलेरिया, कोडियम, हालीमेडा, काउलर्पा तथा डिक्टिओस्फेरिया* जैसे हरे शैवाल जो *क्लोरोफाइसी* शैवाल कुल के सदस्य है, *पैडिना, टर्बिनेरिया* तथा सरगासम आदि भूरे शैवाल *(फिओफाईसी शैवाल कुल)* तथा लाल शैवाल *(रोडोफाइसी शैवाल* कुल का *सिरेमियम)* ये सभी बुरी तरह से सुनामी लहरों से प्रभावित रही है। पुष्पीय पौधों में साईमोडोसिया, एनहैलस, हैलोफिला तथा थैलेसिया वंशो की समुद्री घास (पोएसी कुल) छिछले जल (1 मी. की गहराई तक) में सुलभ रूप से पाई जाती है, सुनामी लहरों के प्रभाव से नष्ट हो चुकी है।

(ख) **वायुशिफ (मैंग्रूव) वन :–** द्वीपों के किनारे जहाँ समुद्री जल निवेशिकाएं घाटी की उपजाउ मिट्टी के साथ समागम करता है तथा वर्षा के मीठे जल के साथ मिलकर झरनों के रूप में पहाड़ियों के नीचे उतरता है, मैंग्रूव पौधे पाए जाते है, जिनकी जड़े दलदली जमीन में होती है। अंडमान-निकोबार द्वीप समूह के मैंग्रूव को संपूर्ण भारत में पश्चिम बंगाल के सुन्दरवन के पश्चात् दूसरा स्थान प्राप्त है। अण्डमान-निकोबार क्षेत्र की मैंग्रूव वनस्पति 1190 वर्ग कि. मी. के दायरे में फैली है। सुदूर एवं मानव जाति की पहुंच के बाहर होने के कारण यह अब भी एक उत्तम मैग्रूव के रूप में विद्यमान है। मैंग्रूव नाना प्रकार के जीवों (नन्हें जीवाणुओं, केकड़ा, झीगा तथा अन्य क्रस्टेशियन आदि से लेकर अनेक प्रकार की मछलियां एवं मगरमच्छ आदि) का आवास हैं। इन वनों में पाए जाने वाले वृक्षों में *राइजोफोरा, म्यूक्रोनेटा, रा एपिकुलाटा, रा. स्टाइलोसा, रा. कंजुगाटा, ब्रूगिएराजिम्नोराइजा, ब्रु. पार्वीफ्लोरा, केरेलिया ब्रेकिआटा, सेरिओप्स तागल, सोनिरेशिया एल्वा, सो. कैसिओलेरिस, एवीसिनिया आफीसिनेलिस, ए. मैरिना* इत्यादि प्रमुख है। इन वनों के बल्बोफिलम, डेन्ड्रोबियम, इरिया आदि वंशों के अनेक आर्किड, ड्राइबिरिया, क्रेर्सीफोलिया, एस्पलेनियम निडस आदि अनेक पर्णांग (फर्न) उपरिरोही के रूप में उगते है। होया पैरासिटिका, डिस्चीडिया बैंगालेन्सिस, डेरिस ट्राइफोलिआटा आदि यहाँ पाए जाने वाले प्रमुख आरोही पौधे हैं, जो नष्ट हो चुके हैं। इन वनों में (विशेषतया सागर तटीय निवेशिकाओं में) जहाँ मीठा एवं खारा जल मिलते है *नीपा फ्रूटिकेंस* नामक ''मैंग्रूव पाम'' पाया जाता है। ये भी तूफानी लहरों से काफी प्रभावित रहे है। एक विशिष्ट द्वितीयक दलदली वनस्पति एक्रोस्टिकम आरियम जो काफी मात्रा में पाए जाते हैं जिसकी कोमल पत्तियाँ सब्जी के रूप में प्रयोग में लायी जाती है। यह बाजारों में भी बेचे जाते है, जिन्हे स्थानीय लोग 'खाड़ी भाजी' के नाम से जानते है। इन खाड़ी भाजी के साथघने झुरमूट में एकेन्थस इलिसीफोलियस, जो नीले पुष्पों तथा कंटीली पत्तियों वाली झाड़ियों एवं साइप्रस की प्रजातियों

के साथ उगती है, ये सभी पूर्ण रूप से नष्ट हो गये है।

मैंग्रूव वनस्पतियाँ समुद्र के मुहाने क्षेत्र में अति लवणीय स्थिति को नियंत्रण करने के साथ साथ कार्बनिक पदार्थो से युक्त जल के बहाव तथा नदियों द्वारा लाई कछारी मृदा को स्थिर करने में सहायक होती है। साथ ही नदियों द्वारा लाए गए मलवें का, समुद्री तल के साथ सामंजस्य करने में सहायक होती है और एक अति उत्तम परिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करती है। इसके आलावा ये समुद्र में प्रदूषण के कारण प्रवाहित हुई चिकनाई के विरूद्ध भी कार्य करती है। इतना ही नही, ये वनस्पतियां ज्वार-भाटा, समुद्री लहरें व अत्याधिक गति वाले हवाओं से भी सुरक्षा प्रदान करती है।

ग) ज्वारिय एवं अनूप (दलदली) वन :– इस श्रेणी के वन भी सुनामी लहरों एवं भूकंप से पूरी तरह से नष्ट हो गये है, कारण इस श्रेणी के वन समतल दलदली क्षेत्रों में समुद्रतटीय भिति से लगे बलुअट मिट्टी में पाये जाते है, जो प्रायः उँची - उँची लहरों के प्रभाव से समुद्री-जल आप्लावित हो जाते है। यहाँ की मिट्टी सदैव नम रहती है, परन्तु इसमें नमक की मात्रा, मैंग्रूव वनों की अपेक्षा कम होती है। यहाँ पाये जाने वाले वृक्षों मे प्रमुख है :– *फोएनिक्स पैल्यूडोसा, ब्राउनलोविआ लैन्सिओलाटा, हैरिटिएरा लिट्टोरेलिस, बैरिगटोनिया रेसीमोसा, एक्सोकेरिया एगेलोचा* इत्यादि तथा इनके साथ ही पाये जाने वाले अन्य वृक्षों में *साइनोमेट्रा रैमीफ्लोरा, साइफिओफेरा हाइड्रोफिलेसिया, ल्यूम्नीटजेरा रेसीमोसा, जाइलोकार्पस ग्रेनेटम, डालीकान्ड्रोन रीडी, सोनेरेशिया एसिडा* इत्यादि मुख्य है। कुछ वृक्षों में जानुमूल (नी रूट) श्वसन क्रिया के लिए एवं तूफानी वायु वेग से वृक्षों को बचाने के लिये वप्रमूल (बट्रस) विकसित होते है, जो छिछले जल तंत्र के विशाल आकार एवं वितान को देखते हुए इन वृक्षों के जीवित रहने के लिये आवश्यक माने जाते है। समुद्री लहरों से इसके यही जड़ उखड़ गये है अतः ये वृक्ष भी सूख गये हैं। ग्रेट निकोबार द्वीप में सुपारी (एरिका कटैचू) के वृक्षों की प्राकृतिक रूप में उगे पौधों की आबादी के साथ जंगली सुपारी वृक्ष भी पाये जाते है। इनके साथ साइजीजीयम समारेन्जेन्स, मैन्जीफेरा कैम्टोस्पर्मा, फाइकस रम्फाई, टर्मिनेलिया बाईअलाटा आदि भी कुछ अंशों में धराशायी हो गये है और कही कही पर सूख गये है। काष्ठीय आरोही एवं विचरणी पौधों में सिसलपीनिया क्रिस्टा, डेरिस स्कैडेन्स, डेरिस हेटरोफिला फलेजेलेरिया इण्डिका आदि भी सूख चुके है। उपरोही आर्किडों में प्रमुख है : डेन्ड्रोबियम क्रुमेनेटम, इरिया अंडमानिका, बल्बोफिलम लेपिडम आदि तथा उपरिरोही पर्णांग में प्रमुख ड्राइमोग्लासम एवं लेपिसोरस वंश के सदस्य तथा एस्प्लीनियम निडस आदि वृक्षो के साथ नष्ट हो चुके है।

सुनामी के बाद पौधों की हालत्

घ) **संपूल वनस्पति :** समुद्रके किनारे बलुअट पुलिन जो उंची लहरों के कारण जल मग्न तो नही होती है, पर तेज झंझावत में समुद्री जल की बौछार से नम रहती है, में पाई जाने वाली वनस्पतियों में पुलिन के बाहरी ओर शाकीय पौधों का और भीतर की ओर वृक्ष और झडियों का बाहुल्य होता है, जो समुद्री लहर के प्रभाव से वंचित है।

समुद्रतटीय वनस्पति में *आइपोमिया पेसकेप्री* नामक गुलाबी फूलों एवं गहरे हरे रंग की पत्तियों वाला एक अति लुभावना पौधा जो समुद्रमुखी बालू के ढूहों पर एक हरी चटाई की तरह बिछा सा लगता है और इसके साथ *विग्ना मैरिना, फाइला नोडीफ्लोरा* तथा *इस्कीमम म्युटिकम* घास भी उगती देखी जा सकती है, ये सभी सुनामी समुद्री लहरों से समाप्त हो चुकी है। बालू के ढूहों पर उगने वाली अन्य घासों में स्पीनीफेक्स लिटोरियस एवं थुआरिया इनवाल्यूटा आदि भी नही बचे। इनके पीछे की पंक्तियों में स्क्रेईवोला सेरीसिया, पैन्डेनस प्रजातियाँ तथा इनके साथ ही उगते है, डोडोनिया विसकोसा, क्लेरोडेन्ड्राम इनर्मी, डेस्मोडियम अम्बेलेटम, मोरिन्डा सिट्रिफोलिया, ब्रायनिया रेसीमोसा, लिया इण्डिका, प्लूचिया इण्डिका एवं एलोफिल्लस कोबे। इन झाडियो के साथ अनेक आरोही पौधे जिनमे वेडेलिया बाइफ्लोरा, साइक्लिआ पेल्टाटा, सिजलपीनिया क्रिसटा मुख्य रूप से पाए जाते है, समुद्री तेज झंझावत से क्षतिग्रस्त हो गए है। इन तटाग्र वनस्पति - प्रारूप के पीछे अंदर की ओर अनेक सागर तटीय वृक्ष जैसे :– पोन्गामिया पिन्नाटा, बैरिंगटोनिया एसिआटिका, हरनान्डिया पेल्टाटा, थेसपिसिया पापुलनिया, माइम्युसोप्स लिटोरेलिस, साइजिजियम समारेंजेन्स, सोफेरा टोमेन्टोसा, पैन्डेनस की प्रजातियाँ अप्रभावित है व इन वनो में प्रमुख आरोही पौधे है–डिस्चीडिया बेंगालेंसिस, डि. नुमुलेरिया, पोथास स्केन्डेन्स, होया की प्रजातियां व डेन्ड्रोबियम क्रुमेनेटम, लुईसिया टेरेटीफोलिया, बल्बोफिलम लेपिडम, सिम्बीडियम एलाईफोलियम, एरिया अंडामानिका आदि मुख्य है जो नष्ट होने से बच गए है। इसके साथ पालीपोडियम फाइमेटोडिस एवं ड्राइनेरिया क्वेरेसीफोलिया आदि पर्णांग लहरों से अप्रभावित रहें है।

२. **अंत : स्थलीय वनस्पति** :– इस श्रेणी के अंतर्गत सदाहरित वन एवं पर्णपाती वन आते है यहाँ के वृक्ष सबसे उँचे, प्रबल सीधे लम्बे होते है, और अति मूल्यवान काष्ठीय वृक्ष माने जाते है, इन सुनामी लहरों से पूर्णतः अप्रभावित रहे है।

३. **ग्रासलैंडस** :– निकोबार के अनेक द्वीपों में तथा अंडमान की अनेक घाटियों में घने घास के मैदान पाये जाते है जिनमें इम्पेरेटा सिलिन्ड्रिका, क्लोरिस बारबाटा, थिमेडा ट्राइएन्ड्रा, हेटेरोपोगोन कोन्टारटस पशुओं के चरने के लिए उत्तम थे, खारे पानी के भर जाने से ये भी नष्ट हो गए है। इन के साथ क्राइसोपोगोन एसीकुलेटस आदि घास तथा कैरेक्स, साइप्रस, फिम्ब्रिसटाइलिस की प्रजातियाँ, स्केलरिया कोचीन चाइनेन्सिस आदि ''मोथा'' कुल (साइपेरिसी) के सदस्य, डेस्मोडियम हैटेरोकार्पम, इरीसाइबे पैनीकुलाटा, यूरेरिया लोगोपेडिआइडिस तथा यूरेना लोबेटा तथा डाइकेनोप्टरिस लीनिएरिस एवं लाइगोडियम फ्लेक्सुओसम नामक पर्णांग आदि भी खारे पानी के प्रभाव से नष्ट हो गए है।

४. **जलीय वनस्पति** :– अंडमान-निकोबार द्वीपों में मीठे जल के प्राकृतिक स्त्रोत, पोखरों, झीलों की कमी के कारण मीठे जल प्राप्य वनस्पतियों की विविधता नगण्य है। किन्तु धान की खेती जो मुख्य रूप से इन द्वीपों में होती है और कही - कही मौसमी अथवा स्थाई पोखरों व झीलों में जो थोड़ी बहुत जलीय वनस्पतियां उगती थी, सुनामी लहरों के कारण खारे पानी से क्षतिग्रस्त हो गई है।

आज सुनामी लहरों से बचाव हेतु बहुत परियोजनाए चलाई जा रही है, जिसमें समुद्र के तटीय क्षेत्रों में वृक्ष लगाने का प्रयास किया जा रहा है। इन पेड़ पौधों की हरित दीवार से सुनामी लहरों की तेज रफतार को कम किया जा सकता है। **इसी कारण वृक्ष जैसे** :– पंडानस प्रजाति, कजुरीना ऑरियंटालिस, पोंगामिया पिन्नाटा, कैलोफाइलम प्रजाति, बैरिंगटोनिया रेसीमोसा, क्लेरोडेन्ड्रम इनर्मी, हिबिस्कस टीलियेशियस, कैलोफाइलम इनोफाइलम, सैलैसिया चाइनेन्सिस, सीसलपीनिया बॉडुक, फिम्ब्रस्टाइलिस फेरूर्जीनिया और मैंग्रूव वनों की कटाई रोक दी गई है। आशा की जाती है भविष्य में इन लहरो के प्रकोप को कम किया जा सकेगा।

———————

जैव उर्वरक : नील हरित शैवाल

आर. के. गुप्ता
भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा

भारत एक कृषिप्रधान देश है। यहाँ की अधिकांश जनसंख्या का मुख्य भोजन चावल है। हमारे देश मे धान की उपज कम होने का मुख्य कारण यह हैकि यहाँ पर अधिकांश कृषक लघु एवं सीमांत हैं। यद्यपि धान की नयी नयी संकर प्रजातियों एवं सघन कृषि साधनों के माध्यम से धान की पैदावार में आशातीत वृद्धि संभव हो सकी है, लेकिन यह विदित है कि अधिक उत्पादन हेतु उर्वरकों का प्रयोग सही अनुपात में होना आवश्यक है। रसायनिक उर्वरक पेट्रोलियम पदार्थों से बनते हैं जिनकी कीमत दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और यह लघु एवं सीमांत कृषकों की खरीद क्षमता के बाहर होते जा रहे हैं। इस कारण ये कृषक उर्वरकों की संतुलित एवं उपयुक्त मात्रा का प्रयोग नहीं कर पाते है और धान की भरपूर उपज प्राप्त करने में असमर्थ रह जाते हैं। साथ ही दूसरा मुख्य कारण यह है कि पानी भरें धान के खेतों में डाली गयी रसायनिक नाइट्रोजन का धान के पौधे केवल 30-40 प्रतिशत भाग ही उपयोग कर पाते है शेष नाइट्रोजन बेकार चली जाती है।

पौधों के उचित विकास के लिए नाइट्रोजन एक अति आवश्यक तत्व है। रसायनिक उर्वरकों के अलावा शैवाल तथा वैक्टीरिया की कुछ प्रजातियाँ वायुमण्डलीय नाइट्रोजन (80 प्रतिशत) का स्थिरीकरण कर मृदा तथा पौधों को देतीं है और फसल की उत्पादकता में वृद्धि करती है। इस क्रिया को जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण कहते हैं। इन सूक्ष्म जीवाणुओं को जैव उर्वरक का नाम दिया गया हैं।

अनेको वैज्ञानिकों ने जिनमें राम नगीना सिंह, एलन, एलिसन और मॉरिस, ए० के० कश्यप, एस० पी० सिंह, चटर्जी और चटर्जी एवं फॉस प्रमुख हैं ने नाइट्रोजन स्थिरीकरण पर उल्लेखनीय कार्य किया है।

हमारे देश में धान के खेत में नील हरित शैवाल पर अध्ययन आंध्र प्रदेश, बिहार, गोवा, हिमाचल प्रदेश, जम्मु कश्मीर, कर्नाटक, केरल, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, असम, उड़िसा, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल राज्यों में कार्य किया गया है।

नील हरित शैवाल जो एक विशेष प्रकारकी की काई है एक मुख्य शैवाल जैव उर्वरक है।

तालिका 1. नाइट्रोजन स्थिरीकरण के मुख्य नील-हरित शैवाल ।

क्र० सं०	प्रजाति	कुल
1.	एनामीना एम्बीगुआ	नॉस्टोकेसी
2.	ए. सिलिंडरिका	,,
3.	ए. फर्टीलिसिया	,,
4.	ए. ह्यूमीकोला	,,
5.	ए. नेमिकुलॉयडस	,,
6.	ए. ओराइजा	,,
7.	ए. मैरिएबिलिस	,,
8.	एनाबीनोस्पीस सरकुलेरिस	,,
9.	सिलिंडरो स्पर्मम गोरखपुरेनसिस	,,
10.	सि. लिकनिफॉरमी	,,
11.	सि. मेजस	,,

12.	नॉस्टाक कॉमुन	,,
13.	ना. पालुडोसम	,,
14.	ना. पिकनिफार्मी	,,
15.	ना. मसकोरम	,,
16.	ऑलोसाइरा फर्टीलिसिया	माइक्रेकिटेसी
17.	कैलोथिक्स ब्रेमीसिया	राइमुलेरिएसी
18.	कै. पेराइटिना	,,
19.	टोलीपोथ्रिक्स टेनिस	साइटोनिमेटेसी
20.	मेसटीगोक्लेडस लेमिनोसस	स्टीगोनिमेटेसी

नाइट्रोजन स्थिरिकरण क्रिया शैवाल की संरचना में स्थित एक विशिष्ट प्रकार की कोशिका में होती है जिसे हिटरोसिष्ट कहते हैं। यह सामान्य कोशिकाओं से संरचना एवं कार्य में भिन्न होती है। इसका निर्माण सामान्य कोशिकाओं से ही कोशिका मित्ति मोटी होने तथा आंतरिक परिवर्तनों के फलस्वरूप होता है। नील हरित शैवाल द्वारा स्थिर किया गया नाइट्रोजन पौधों को शैवाल की जीवित अवस्था में ही मिल जाता है या शैवाल कोशिकाओ के मृत होने के बाद जीवाणुओ द्वारा विघटन होने पर प्राप्त होता है। भारतीय अनुसंधान केन्द्र, नई दिल्ली में इस दिशामें काम हो रहा है तथा किसानों को धान की खेती के लिए यह जैविक खाद दी जा रही है।

नील-हरित शैवाल का उत्पादन टैंक विधि, ट्रफ विधि, गड्ढो में और खेती द्वारा होता है। आधारभूत रूप से चारों विधि की क्रिया एक है। इसमे किसी भी जगह में पानी जमा कर, भुरभुरी मिट्टी, सुपर फास्फेट कार्बोफ्यूरान और शैवाल स्टार्टर कल्चर की सहायता से उत्पादन किया जाता है। शैवाल के तैयार होने पर इसे पूर्णतया धूप में सुखाने के बाद शैवाल पपड़ियों को इकट्टा करके धान की रोपाई के 5-6 दिन बाद स्थिर पानी में 12.5 किग्रा. प्रति हेक्टयर के हिसाब से शैवाल कल्चर समान रूप से विखेर दें। परंतु यह ध्यान रहे कि कल्चर डालने के बाद लगभग 4-5 दिन तक खेत में पानी स्थिर रहे।

धान के खेत का वातावरण नील-हरित शैवाल की वृद्धि के लिए सर्वथा उपयुक्त होता है। इसकी वृद्धि के लिए आवश्यक ताप, प्रकाश, नमी और पोषक तत्वों की मात्रा धान के खेत में विद्यमान रहती है। इस प्रकार यदि नील-हरित शैवाल का जैव उर्वरक के रूप में उपयोग किया जाय तो आर्थिक लाभ के साथ पर्यावरण की सुरक्षा भी हो सकेगी।

अतएव नील-हरित शैवाल जैव उर्वरक (बी. जी. ए) का प्रयोग केवल रासायनिक उर्वरकों का एक विकल्प ही नहीं अपितु वरदान है।

———————

साइपेरस रोटुन्डस – एक खर पतवार के औषधीय गुण

मानस रंजन देवता एवं सुशील कुमार सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

पौधे की किस जाति से कोई उपयोगी तत्व कब प्राप्त हो जाएगा, कौन सी जाति हमारी फसलों की उन्नति या उसमें होने वाले रोंगों की रोकथाम में प्रयुक्त होगी, कौन से गुण संकरण में लाभदायक होंगे किसे ज्ञात है? कौन जानता था कि मूंज घास (Saccharum munja) ईख (Sugarcane) को उन्नत करने में उपयोगी होगी या टैक्सस (Taxus) नामक जिन्मोस्पर्म से कैंसर की दवा एवं पेनीसिलियम नामक कवक से पेनीसिलीन नामक प्रतिजैविक पदार्थ प्राप्त होगा?

वनस्पति जगत के सभी पेड़ पौधे किसी रूप में अपनी उपादेयता सिद्ध करते है, जहां एक ओर उनकी यह उपादेयता लाभप्रद हो सकती है तो दूसरी तरफ ये हानिकारक भी हो सकते है। इसी क्रम में साइपेरस रोटुन्डस (Cyperus rotundus) एक सर्वदेशीय खर पतवार का विवरण प्रस्तुत किया गया है जिसको बोलचाल की भाषा में मोथा के नाम से जाना जाता है तथा साइपेरेसी (Cyperaceae) कुल का सदस्य है। यह मुख्य रूप से कृषियोग्य नम भूमि, नदियों एवं तालावों के किनारे पाया जाता है जो कि मुख्यतः आलू, प्याज, लहसुन, गन्ने एवं गेहूँ आदि फसलों को उनकी वृद्धि के लिये दी जाने वाली उर्वरक का उपयोग करके उनकी वृद्धि को रोककर हानि पहुंचाता है। इन हानिकारक गुणों के बावजूद इसमें उपस्थित रासायनिक तत्व औषधीय महत्व वाले गुण रखते है। जिसके कारण यह पौधा विभिन्न रोगों की रोकथाम या ईलाज में लाभकारी है। प्रस्तुत लेख में मोथे की पहचान के लक्षण, औषधीय गुण एवं उपयोग वर्णित हैं।

यह एक चमकीला गाढ़े हरे रंग का बहुवर्षीय खर पतवार है जिसकी ऊँचाई प्रायः 10-30 सेमी. (कभी कभी 81 सेमी।) तक होती है। इसका कंद अर्द्धगोलाकार अथवा चपटा बेलनाकार एवं परिपक्वता के समय काले रंग का होता है। तना एकल, बेलनाकार, 1-2 मिंमी मोटा तथा उपर की ओर तीन भागों में विभक्त होता है। पत्तियां तने से छोटी तथा तने के शीर्ष पर आच्छादित, अत्यधिक लम्बी, रेखीय, चपटी, लम्बाग्र शीर्ष एवं लगभग 2-5 मिमी. चौड़ी होती है। पत्तियां आधार पर भूरे रंग के आवरण (Sheath) से ढकी होती है जो कि जल्द ही रेशों में परिवर्तित हो जाता है। पुष्पक्रम सामान्यतः पुष्पछत्र तथा कभी कभी संयुक्त है, 2.5-9 सेमी. लम्बा तथा चौड़ा होता है। प्राथमिक किरणें (Primary rays) 5-20 सेमी. लम्बी होती है। स्पाइक 3-11 अनुसूचीयुक्त होते है।

यह भारतवर्ष के लगभग सभी प्रान्तो में विशेष रूप से मैदानी एवं तराई क्षेत्रों की नम भूमि पर वर्ष भर फूलते पाये जाते है। यह जहां एक बार उगते है उस जगह पर पुनुरुद्भवन द्वारा तीव्र गति से फैल जाते हैं।

औषधीय उपयोग – साइपेरस रोटुन्डस या मोथे को आयुर्वेद में अमा पाचक कहा जाना अत्यन्त उपयुक्त प्रतीत होता है। अमा मतलब किसी रासायनिक कारण से शरीर में उत्पन्न होनेवाला विषैला पदार्थ। और शरीर को जो इस विषैल पदार्थ के प्रभाव से बचाए उसे अमा पाचक कहा जाता है। मोथे की ऐसी कई उपयोगिताएं हैं जिसके कारण उसे आयुर्वेदिक औषधियों मे जैविक विषनाशक के रूप में प्रयोग मे लाया जाता है। यह स्वाद मे तीखा एवं कड़वा होता है। प्राचीन ग्रन्थों में यह स्वास्थ्यवर्धक, जलननाशक, दस्तबन्धक (Stool Binder) के रूप में उल्लेखित है। यह पाचन क्रिया को सामान्य करता है एवं वायुदोष से मुक्ति दिलाता है। यह ऑत में पाये जाने वाले कृमियों (Intestinal worm) का विनाश करता है। इसके अतिरिक्त यह मूत्र रोग सम्बन्धित विकारों तथा बुखार को कम करने की औषधि बनाने मे प्रयाग मे लाया जाता है। आजकल इसको आमाशय एवं ऑत सम्बन्धी रोगों जैसे अजीर्ण, अतिसार, आमातिसार आदि के उपचार में प्रयोग किया

साइपेरस रोटुन्डस – एक खर पतवार

जा रहा है। मोथा उपरोक्त वर्णित रोंगों के अलावा अन्य क्ई रोगों, उदाहरणस्वरूप बहुमूत्र रोग, चर्म रोग, सन्धिवात रोग, ग्रन्थिशोथ, मासिक धर्मदोष, शक्तिहीनता आदि में लाभदायक है। इसके अतिरिक्त इसके प्रकन्दसे एक सुगन्धित तेल निकलता है जिसका उपयोग इत्र बनाने मे किया जाता है।

———————

''टॉकसिंग'' सर्वेक्षण यात्रा – अविस्मरणीय अनुभव !

कुमार अम्बरीष
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इटानगर, अरुणाचल प्रदेश

अरुणाचल प्रदेश अपनी विशाल जैव विविधता एवं विलक्षण वनों के लिये भारत ही नही अपितु सम्पूर्ण विश्व में विख्यात है। भारतीय वनस्पति सर्वेण, इटानगर् के तत्वावधान में प्रदेश का वानस्पतिक सर्वेक्षण सन् 1977 से प्रगति पर है। किंतु यहाँ की भौगोलिकी एवं विषम दूरगामी पर्वतीय वन आच्छादित चोटियों के कारण सर्वेक्षण कार्य अत्यंत कठिन होता है। विशेषकर चीन (तिब्बत) से सटे अन्तर्राष्ट्रीय सीमांकित क्षेत्रों में जो मुख्य सडक मार्ग से दूर है एवं मूलभूत सुविधाओं से वंचित है। ऐसे क्षेत्रों में सर्वेक्षण अभी अभी अधूरा हैं।

विभागीय कार्यक्रम के अनुसार मैं एक ऐसे ही सीमांकित जिले के वानस्पतिक सर्वेक्षण में रत हूँ जिसका नाम है ''अपर सुबन सिरी''। इस जिले का उत्तरी भाग चीन (तिब्बत) से अंतर्राष्ट्रीय सीमा का निर्धारण करता है। यही क्षेत्र जिले एवं प्रदेश का सबसे दूरगामी सर्किल क्षेत्र है जिसका नाम है ''टॉकसिंग''। यह समुद्रतल से लगभग 3000 मीटर की ऊचाँई पर स्थित है एवं मुख्य सड़क मार्ग लिमिकिंग से लगभग 115 किमी की दूरी पर स्थित है। यहाँ से टॉक सिंग जाने हेतु सूबनसिरी नदी के किनारे किनारे एक अतिकठिन ऊबड़-खाबड़ सीढीनुमा पैदल मार्ग है जिस पर करीब 4-5 दिन लगते हैं। रास्ता इतना कठिन है कि स्थानीय लोग भी टाकसिंग जाने के नाम से घबराते है। ऊँची-खड़ी पहाड़ियों पर चढने के लिये लकड़ी की सीढ़ियाँ एवं नदियों को पार करने के लिये झूला पुल बनाये गये है और अगर सीढी से फिसल गये तो सीधे नीचे सुबनसिरी नदी में गिरने का भय बना रहता है। रोमांचकारी सर्वेक्षण दौरा मैंने हाल ही अक्टूबर, 2005 में अपने साथियों के साथ पूर्ण किया है।

जिले के डिप्टी कमिशनर श्री गोकेन बसार एवं जिला वन अधिकारी श्री गपाक डाकपे ने मेरा उत्साह बढ़ाया एवं कहा कि यह एक ऐसा वन आच्छादित क्षेत्र है जिसका अभी तक सर्वेक्षण नहीं हो पाया है। अगर आप वहाँ जा सकेगे तो यह जिले एवं आपके लिये एक अच्छी उपलब्धि होगी। वहाँ की वनस्पतियों की जानकारी हमारे पास भी उपलब्ध नही है। अरुणाचल के घने एवं वृहद् वनों में घनघोर बरसात में 10 दिनों की पैदल यात्रा करने की हिम्मत मैं जुटा नहीं पा रहा था। जिले का फ्लोरा तैयार करने में यह क्षेत्र सर्वेक्षण रहित रह जाये यह बात भी दिल को अखर रही थी। अन्ततः मैने निश्चय किया कि चाहे जो हो मैं टाकसिंग पहुँचने की कौशिश अवश्य करुगाँ। इसके लिये अक्टूवर माह, 2005 को चुना क्योंकि इस समय अरूणाचल में वर्षा सामान्यतः कम होती है।

अन्ततः दिनांक 9.10.2005 को सभी प्राथमिक तैयारियों के उपरान्त मैं श्री अब्दुल हुसैन एवं श्री तकिया के साथ इटानगर से जिले के मुख्यालय दापोरिजो पहुँचा। यहाँ से प्रातः अगले दिन हम सड़क मार्ग से होते हुये लिमिकिंग पहुँचे। यह जिले का मुख्य सड़क मार्ग से जुड़ा हुआ अंतिम सर्किल क्षेत्र है और उससे आगे जाने के लिये सड़क नही है। यही से हमें टाकसिंग के लिये पैदल यात्रा करनी थी अतः रास्ते में सामान ढोने के लिये तीन कुलियों की व्यवस्था की गयी। उनमें से एक कुली श्री तापी मारा को हमने अपने दल का गाइड नियुक्त किया जो मुझे समझा रहा था कि साहब सीढ़ियों वाला रास्ता है क्या आप सकेगा? नीचे गिर गया तो सुबन सिरी मे लाश भी नही मिलेगी! इन शब्दो से मैं भयभीत तो हुआ लेकिन मेरा इरादा और भी पक्का हो गया। फिर उसकी सलाह पर दवाइयाँ, खाना पकाने के बर्तन एवं आवश्यक सामग्री रख ली । इस प्रकार हम अगले दिन प्रातः 6 बजे एक पाँच सदस्यों के दल के रूप में टाकसिंग की ओर निकल पड़े। यहाँ से 2 घंटे के उपरान्त पहले विश्राम स्थल शेरीथापा पहाड़ी पर पहुँचे ही थे कि बरसात शुरु हो गयी।

हमें नीचे सुबनसिरी नदी पर बने प्रथम झूलापुल (जो लैडं स्लाइड होने के कारण काफी क्षतिग्रस्त हो गया था एवं मोटी रस्सियों के सहारे दुया बंगा ग्रेंडीफ्लोरा के विशाल वृक्ष से बँधा हुआ था) को पार करना था। हमारें गाइड ने मुझे पहाड़ी से नीचे उतरने के लिये एक बाँस का डंडा पकड़ा दिया था। किसी तरह रस्सी को पकड़-पकड़ कर डरते-२ पुल पार किया। पुल से नीचे देखने पर नदी एक धागे के समान प्रतीत हो रही थी जो लगभग 300 मीटर नीचे थी। पुल पार करते ही मैने अपने कैमेर से विभिन्न पेड़ पौधों के चित्र लिये एवं विभिन्न पादप नमूने भी एक एकत्र किये। इस कार्य में मेरे साथी श्री टकिया मद्द् कर रहे थे। यहाँ पर उपोष्ण कटिबंधिय वन दृष्टिगोचर हो रहे थे जिनमें सेपियम वैकाट्म, सिंड्रेला तूना, मैंगनोलिया ग्रिफिथी, सिन्नामोमम टमॉला, सौराइजा पंडुआना मेसुआ फेरिया आदि वृक्षों का मिश्रण था। यहाँ से हमें करीब 550 मीटर ऊँची लकड़ी की सीढ़ीं पर चढ़कर आज के विश्रामस्थल तामाचुंग बस्ती की ओर पहुँचना था। यह इस यात्रा का सबसे कठिन एवं खतरनाक क्षण था क्योंकि घनघोर बरसात में जब हम सीढ़ियों पर चढ़ रहे थे तो उनमें से सीढ़ी के क्ई पायदान पानी से गल कर टूट चुके थे एवं पैर फिसलने मात्र से ही नीचे गहरी सुबनसिरी नदी में गिरने के भय से ही शरीर कँाप उठता था। ईश्वर का नाम लेकर ऊपर चढ़ते चले गये। आखिर आधे घंटे की इस चढ़ाई के उपरान्त शेरी पहाड़ पर पहुँच कर चैन की साँस ली।

दिन के 11 बज चुके थे मैने गाइड से पूछा कि अभी तामाचुंग कितनी दूर है तो उसका उत्तर था आधे में आ गये गये है। यानी 5 घंटे की चढ़ाई और है। कुछ खाने पीने के बाद हमने यहाँ के सघन मिश्रित वनो के अन्दर से प्रस्थान किया जहाँ पर केया असामिका, क्वेरकस स्पाइकाटा, सिजिजियम क्यूमिनी, अमूरा वालिचियाई, लिट्सिया सिट्राटा आदि वृक्ष प्रजातियँा एवं पाइपर, बिगोनिया, आक्सीस्पोरा, रुबिया आदि छोटे पौधे बहुतायत में थे। जंगल इतना घना था कि सूर्य का प्रकाश भी जमीन पर नही पड़ रहा था। विभिन्न पक्षियों का कलरव सन्नाटे में सुनाई दे रहा था। अत्यधिक चढ़ाई व कठिन रास्ते के कारण शाम के चार जंगल में ही बज गये थे। दिन छिपते -२ हम एक छोटे सुंदर गाँव तामा चुंग-चुंग पहुँचे/यहाँ की ऊचाँई 7500 फिट् थी। सामने पाइनस वालिचियाई से ढके हुये हरे भरे पहाड़ दिखाई पड़ रहे थे। ऊचाई के कारण ठंडी हवायें चल रही थी। पहाड़ियों की चोटियों पर बर्फ दिखलाई पड़ रही थी और मौसम ठंडा था। रात्रि विश्राम के लिये आर्मी कैंप की शरण ली। बॉर्डर एरिया के कारण यहाँ किसी भी नव आगंतुक को शंका की दृष्टि से देखा जाता है। हमनें उनके सामने विभागीय जानकारी एवं टॉकसिंग सर्वेक्षण का लक्ष्य बताया तो उन्होने चित्र न लेने की शर्त पर हमारी मदद की।

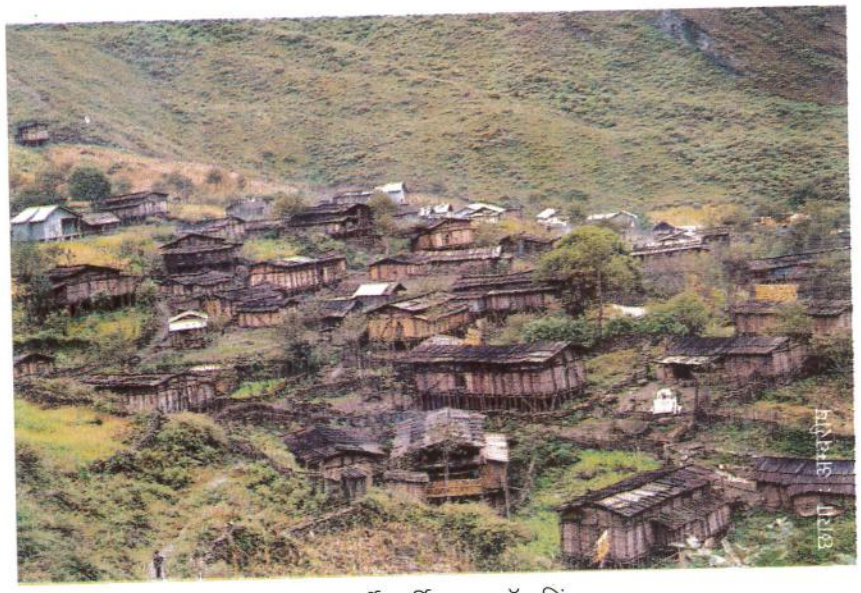

सुदूरवर्ती सर्किल – टॉकसिंग

अगले दिन प्रातः 7 बजे फिर दल ने अगले पड़ाव डुजोपोंग की ओर प्रस्थान किया। गाइड मारा`न

डैन्ड्रोबियम मॉस्कैटम (बुच. हैम.) सू

बताया कि आज हमें 6 झूला पुलों एवं 9 सीढ़ियों से होकर करीब 26 कि.मी. का मुश्किल रास्ता तय करना है। आज मौसम साफ था रात्रि में सामने उत्तर एवं पूरव की ओर चुंग-चुंग पर्वत की चोटियों पर बर्फ गिरी थी जो एक विशाल सफेद चादर के समान प्रतीत हो रही थी। बर्फ पर सूर्य का प्रकाश पड़कर चीड़ एवं बाँस के जंगलो को चीरता हुआ प्रकृति का एक अदभुत सुन्दर नजारा प्रस्तुत कर रहा था। सामने सियुक एवं सुबनसिरी नदी का संगम एवं उस पर बना झूला पुल अति सुंदर लग रहा था। कई सुंदर झरने भी इस क्षेत्र की शोभा में चार चाँद लगा रहे थे। मैने यहाँ मुख्यतः ब्लूपाइन क्रेरकस, टैक्मोकापर्स, ऐलनस, ब्रेसाइ ओरिसस आदि की वृक्ष प्रजातियाँ देखी। अन्य वनस्पतियों में रूबस इल्पिटिकस्, बिगोनिया, ऐरिसिमा, बरवेरिस एशियाटिका, एनाफेलिस, नेफेलियम, आर्टिमीसिया, गॉल्थीरिया, रेननकुलस एवं डैंड्रोबियम, बल्बोफिल्लम इरिया, गुडेयरा आदि आर्किडों की प्रजातियाँ दृष्टिगोचर होती है। कई ऐसे विचित्र पौधे भी नजर आ रहे थे जिन्हे मैने पहली बार ही देखा था। पौधों के नमूने एकत्र करते-२ शाम को 5 बजे थक हार कर सुबनसिरी नदी के तट पर बसे इस एक मात्र परिवार के गाँव डुजोपोंग पहुँचे। यहाँ पर जिला प्रशासन ने एक लकड़ी का विश्राम गृह बनाया है। इस गाँव में मात्र एक स्थानीय चौकिदार एवं उसका परिवार रहता है। अक्सर टॉकसिंग आने जाने वाले आर्मी के जवान इस बैरक नुमा विश्राम गृह में रुकते हैं। सौभाग्यवश आज यहाँ इंस्पेक्टर श्री शिशुपाल सिंह विष्ट एवं उनके साथ दो जवान भी मुझसे कुछ देर पहले पहुँचे थे। परिचय के उपरान्त पता चला कि वे भी टाकसिंग जा रहे है तो हैसला और बढ़ गया। थकान के मारे 50 कि.मी. की लम्बी यात्रा से मेरे पाँव दर्द कर रहे थे। इंसपेक्टर बिस्ट की सलाह पर पैनें दर्द निवारक गोलियाँ खाकर राहत की साँस ली। उन्होने बताया कि अभी बस दो दिन और लगेंगें अतः हिम्मत से काम लो! कल रेड्डींग पहुँच गये तो समझो टाक सिंग दूर नही! वहाँ पर आप हम लोगों के साथ रूककर आराम से अपना सर्वेक्षण कार्य पूर्ण कर सकते हैं। चूल्हा जलाया गया और सब मिलकर एक साथ खाना बना रहे थे कि रसोई के पीछे किसी जंगली जानवर की आहट से सब चौंक गये! हमारे गाइड टापीमारा ने बताया कि यह बाघ वाहुल्य क्षेत्र है। जंगल में और जानवर जैसे हिरन, सुअर जंगली कुत्ता, जंगली बिल्ली, लंगूर एवं काला भालू आदि पाये जाते है जो शाम को नदी के तट पर पानी पीने के लिये आते है। अतः बाहर अकेले नहीं जाना है। सब ने मिलकर खाना खाया। नदी के तीव्र जलप्रवाह का शोर रात के सन्नाटे को चीरता हुआ हमें कब सुला गया कुछ पता ही नही चला।

अगले दिन सुबह प्रातः 4 बजे मुझे श्री बिष्ट ने जगाया और कहा कि सूरज चढ़ने से पहले हमें सामने वाली 8 किमी. की खड़ी चढ़ाई को पार करना है। नही तो देर हो जायेगी। अतः सुबह 5 बजे जाय बिस्कूट खाने के बाद हमने, चढ़ाई शुरु की। आज फिर से वारिश शुरु हो गयी थी। सीढ़ीनुमा ऊबड़-खाबड़ रास्ते से होते हुए करीब 10 बजे दादू टॉप पर पहुचें जिसकी ऊचाई समुद्र तल से लगभग 8.500 फीट् है। इस दौरान

मैनें क्वेरकस, ऐसर, पाइनस, रोडोडैन्ड्रोन ऐलेनस, इलिओकार्पस, एक्स बकलैडिंया पापुलिनया,पालीएल्थीया, लिंडेरा; शीमा, टर्मिनेलिया,एंटीडेस्मा आदि वंशो की जातियों के पादप नमूने एकत्र किये साथ ही अन्य वनस्पतियों में काप्टिस टीटा, एनीमोन, रेननकुलस, बिगोनिया, आक्सीस्पोरा, रिकोटेकम, रोजा, जैथो जाइलम, रयूमैक्स, इलेटोस्टेमा, डैब्रोजीसिया, क्राइफोर्डिया, ड्राइमेरिया, हैडिकियम, सिम्बीडियम, इरिया, डैंडोबियम, बल्बोफिल्लम आदि प्रजातियो को भी एकत्र किया। यहाँ से नीचे उतरने के लिये रास्ता बहुत कठिन था। जगह-२ पर भूस्खलन के कारण पेड़ गिरे हुये थे जिनके ऊपर से चढ़चढ़कर हम अपराहन् २ बजे दादु गाँव पहुँचे।

यह एक छोटा गाँव था जिसमें 5 परिवार मारा जनजाति के निवास करते है। यहाँ पर हमनें विश्राम किया एवं दिन के भोजन में ग्रामवासियों द्वारा दिये गये मक्ई के भुट्टो को आग में भूनकर खाया। गाँव के चारों तरफ हरियाली थी एवं पुलम, सेब, एवं खुबानी के फलदार पेड़ लहलहा रहे थे। यहाँ से रेडडींग जाने के लिये हमने दो झूला पुलों को और पार किया एवं शाम 5 बजे रेडडी गाँव से गुजरते हुऐ रेडिड्ंग पहुँच गये।

यह इस क्षेत्र का सबसे बड़ा गाँव है। जिसमें कुल 17 परिवार है। लगभग 6.500 फीट पर बसे इस गाँव के चारो तरफ रोडोडैन्ड्रोन, क्वेरकस, टैक्सोकार्पस, टेक्सस पाइनस, वर्जीनिया, इंपेराटा, रोजा, मैंगंनोलिया, पोलीगैला, कोराइडेलिस, आर्टीमीसिया एंवं इनकी प्रजातियाँ दिखाई दे रही थी। रात को हमने यहाँ की मुख्य फसल आलूओं का स्वाद चखा जो वाक्ई खादिष्ट थे। फिर ग्राम के मुखिया जी के घर उबली हुई मक्ई एवं नमकीन घास (टैक्सस की छाल से निर्मित) का आनन्द उठाया। क्षेत्र में डॉक्टर न होने के कारण क्ई परिवारों में बीमारियाँ फैली थी। हमने कुछ महिलाओं एवं बच्चों को यथासंभव दवाइयाँ दी।

यहाँ से अगले दिन प्रातः 6 बजे हम अपने लक्ष्य टाकसिंग की ओर बढ़े। टाकसिंग यहाँ से लगभग 18 किमी. दूर था अतः गाइड ने हमसे आराम से चलने को कहा क्योंकि टाकसिंग से पहले डोलुक गाँव से हमें 6 किमी. की कठिन चढ़ाई चढ़नी थी। रास्ते में लैंड स्लाइड के कारण जगह-२ पर विशाल पत्थर एवं दलदल से हो कर हमारा दल आगे बढ़ता चला जा रहा था। मंजिल पर पहुँचनें की अनुभूति मात्र से ही मन आंन्दोलित हो उठता था। तीन दिन से चलते-२ पैर भी अभ्यस्त हो चले थे। रास्ते - 2 मैंने घाटियों, जलप्रपातो, छोटी बड़ी जल धाराओं, गगन चुम्वी पहाड़ियों पर चीड़ एवं टैक्सस के जगंलो की अदभुत छटाओं को अपने कैमरे में कैद किया। दिन के बारह बज गये थे। चारो तरफ धूप खिली थी। हमने कमला नदी के किनारे विश्राम किया एवं चीड़ की लकडियों को जलाकर चाय बनाई। जल पान के पश्चात डोलुक गाँव से होते हुए 6 किमी. वाली खड़ी चढ़ाई चढ़ने लगे। यहाँ पर बरसाती नालों के ऊपर टैक्सस के तने काटकर रास्ता बनाया गया था। क्ई जगह स्खलन से रास्ता टूटा हुआ था। मुश्किल से सब आगे बढ़ रहे थे। बस पहुँच गये–बस पहुँच गये कहकर एक दूसरे का हौसला बढ़ा रहे थे। रास्ते में ऐसर, बेटुला, टैम्सस पाइनस को मिश्रित वन के रूप में देखा। 3 घंटे की थकाऊ चढ़ाई के बाद हम भारत वर्षके इस अंतिम सर्किल क्षेत्र के ग्राम में पहुँच गये। टॉकसिंग सर्किल अरूणाचल ही नही संभवतः भारत का सबसे सुदूरवर्ती क्षेत्र है जो समुद्रतल से लगभग 3000 मीटर की ऊचाई पर स्थित है एवं 15000 फीट ऊँची मि गी तुंग पहाड़ियों के बीच में स्थित है। यहाँ से तिब्बत 2 दिन में पहुँचा जा सकता है। पूर्व में स्थानीय लोग तिब्बत बाजार पर निर्भर करते थे। अभी व्यापार बंद होने के कारण लोग मुख्यतः कृषि, वागवानी, बकरी एवं भेड़ पालन, मुर्गीपालन आदि पर निर्भर हैं महिलायें आकर्षक ऊनी शाल एवं गलीचें बनाने में निपुण हैं। सर्दियो में यहाँ तापमान शून्य से भी नीचे चला जाता है जिसमे चारो तरफ बर्फ जम जाती है एवं जीवन अस्त व्यस्त हो जाता है। फिर यहाँ की मिट्टी में अधिक ह्यूमस होने के कारण यहाँ पर विभिन्न प्रकार के फल वृक्ष जैसे सेब, संतरा नींबू, पुलग, नाशपाती, खुबानी आदि के साथ-२ जंगली फलों वाले क्षुपों, शाकों एवं आरोही लताओं की भरमार है। यहाँ पर शीतोष्ण उपहिमाद्रि वन दृष्टिगोचर होते है जिनमें क्वेरकस, ऐसर, बेटुला, रोडोडैन्ड्रोन्स, टैक्सस जूनिपेरस आदि वृक्षों

तागिन (चादर) जनजाति की स्थानीय महिला पारस्परिक बेशभूषा में (टॉकसिंग)

का मिश्रण है। साथ ही अन्य वनस्पतियों में जैसे पोटेंटिला, हिप्पोफी, डैक्टाइलोराइजा, हाइपरिकम, जेन सियाना, पोडोफिल्लम, प्रिमूला, मैकेनोटिसस नारडोस्टाइकस, काप्टिस, एकोनीटम, पिकरोराइजा एनीमोन, रैननकुलस एवं एस्टेरेसी कुल की विभिन्न प्रजातियाँ पायी जाती है। यहाँ पर लैमिएसी कुल की एकमात्र प्रजाति ल्यूकोसिपैट्रम कैनम भी प्रचुरता में पायी जाती है।

टाकसिंग सर्किल में कुल 31 परिवार है एवं जनसंख्या करीब 180 है। यहाँ पर शिक्षा हेतु केवल एकमात्र मिडिल स्कूल है जिससें लगभग 90 बच्चे शिक्षारत हैं। मूलभूत सुविधायें जैसे बिजली, सड़क, पानी न होने के कारण क्षेत्र से पलायन तीव्र गति से हो रहा है। यहाँ पर हमने आ-टी. बी. पी. की मदद से दो दिन व्यतीत किये तथा आस-पास के क्षेत्रो का व्यापक सर्वेक्षण भी। यहाँ से आगे हिमाद्रि वनों में जाने की अनुमति उन्होंने हमें नही दी क्योंकि सीमाकिंत क्षेत्र अति संवेदनशील था। सेना के वरिष्ठ कमांडर ने हमारे सर्वेक्षण दल को टॉकसिंग मे देखकर आश्चर्य जताया एवं हमारे कार्यो को सराहा। यह यात्रा मेरे दल के लिये भले ही कठिन थी पर इसके सुखद परिणामों ने हमारी सारी थकान दूर कर दी। मैने विभिन्न दुर्लभ एवं विचित्र पौधों के 350 से अधिक नमूने एकत्र किये व लगभग 250 चित्र भी खींचे। दो दिन में सर्वेक्षण निष्पादन के बाद हमने वापिस लिमिकिंग की राह पकड़ी। चार दिन बाद लिमिकिंग पहुचे जहाँ से वाहन द्वारा 26 अक्टूबर को सकुशल इटानगर पहुच गये। इति!

आभार – लेखक विभाग एवं उन सभी सज्जनों का आभारी है जिनकी असीम सहायता से यह यात्रा पूर्ण की गयी!

———

च्यूर एक परोपकारी वृक्ष

नन्दलाल तिवारी
केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा

च्यूर का वृक्ष बाहरी हिमालय में ५०० से १३०० मीटर की उँचाई के क्षेत्रों में पाया जाता है। इस वृक्ष को शहद, गुड एवं घी देने वाला जादुई वृक्ष भी कहा जाता है। इस वृक्ष का वैज्ञानिक नाम Diploknema butyracea (Roxb.) H. J. Lam. है। यह वृक्ष लीची कुल का है। इस वृक्ष को घी वृक्ष भी कहते है। यह वृक्ष उत्तरांचल में काली नदी की घाटी से लेकर नेपाल में बहुतायत संख्या में पाया जाता है। इसके अलावा अरूणाचल प्रदेश के तवांग क्षेत्र तथा भूटान से लगे हुए कुछ क्षेत्रों में भी यह वृक्ष देखने को मिलता है। इस वृक्ष को उगाने में अच्छी मिट्टी तथा नमी की आवश्यकता होती है। इस वृक्ष में लगभग दस वर्ष बाद फूल एवं फल आने लगते है। यह वृक्ष नवम्बर से लेकर जनवरी तक फूलते एवं फलते है। इस वृक्ष के फूलते ही मधुमक्खियाँ छत्ता बनाकर फूलों के रस को एकत्र कर शहद बनाती है। इसके शहद को सर्वोत्तम माना जाता है। इसके साथ ही फूलों के परागकणों से गुड का निर्माण होता है जो कि विशेषकर नेपाल के लोग तैयार करते है तथा इसका स्वाद ताड़ के गुड़ की तरह होता है। इसके पकें हुए बीज तेल बनाने के काम आता है जिसका रंग घी की तरह होता है जो कि पकवान बनाने के काम आता है। इसके अलावा यह तेल गर्मी के दिनो में भी कम पिधलने के कारण क्रीम के रूप में प्रयोग किया जाता है जो चेहरे को मुलायम रखता है।

व्यापारी इस वृक्ष की लकड़ी बेचते है और यदि व्यापारी वर्ग इस वृक्ष को इसी तरह काटते रहे और हम इसके प्रति सचेत न हुए तो हम एक उपयोगी वृक्ष से हाथ धो बैठेगें।

अतः यह आवश्यक है कि इस वृक्ष को अधिक से अधिक लगाकर इसे पुनर्जीवित तथा इनके अंधाधुध उपयोग को रोकनें के लिये जनमानस को सचेत करेन के लिये प्रयास करने चाहिये।

जमीं के इलाके वीरान होते, अगर ये न होते
इन्हीं ने हवाओं में खुशबू मिलायी
जहाँ के फजाओं की रंगत बढायी
इन्हीं ने बनाके नजारों को सुन्दर
हरे रंग से है ये दुनिया सजायी ॥

–त्रिवेनी प्रसाद दूबे (सौजन्य : हरित अभियान : अनुभव-2001)

रूद्राक्ष (भगवान शंकर की आँख)

नन्दलाल तियारी
केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा

भारत में पेड़ पौधों और मनुष्यों के बीच का सम्बन्ध बहुत ही गहरा है। हमारे घरेलू जीवन में पेड़ो का किसी न किसी रूप में योगदान अनादि काल से रहा है चाहे वह औषधि, भोजन या मकान बनाने से हो या धार्मिक दृष्टिकोण से ही क्यों न हो। पौधों का हमारे जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान है। या अगर यह कहा जाय कि पेड़ पौधों के बिना पृथ्वी पर मनुष्य ही नही बल्कि अन्य जीव-जन्तुओं का जीवन संभव नहीं है तो अतिशयोक्ति नही होगी।

रूद्राक्ष हिन्दु धर्म में एक उच्च स्थान रखता है। इस वृक्ष का वैज्ञानिक नाम Elaeocarpus sphaericus (Gaertn.) Roxb है। इसे हिन्दी में रूदाक्षी, बंगला में रूद्राक्षयः संस्कृत में रूद्राक्ष कंहा जाता है। यह वृक्ष मध्याकार होता है तथा नेपाल, बंगाल, बिहार, आसाम व पूर्वोत्तर भारत में मध्यप्रदेश एवं महाराष्ट्र में पाया जाता है। कभी - कभी इसके सजावट के लिये भी लगाते है। इस वृक्ष की ऊँचाई १० से १५ मीटर एवं तने की मोटाई १ मीटर तक होती है। इसकी पत्तियाँ आम और जामुन से मिलती जुलती है लेकिन पतली होती है। यह वृक्ष जून से सितम्बर तक फूलते एवं फलते हैं। इसका फूल सफेद होता है तथा फल हरा जो २ से ३ से. मी. का होता है। फल के अन्दर एक गुठली (बीज) होती है जो कि १ से. २ से. मी. तक की होती है। इसके फल अगस्त से सितम्बर के मध्य पकते है। पका फल नीलापन लिए बैगनी रंग का गुंठलीदार होता है जिसके अन्दर हल्कें पीले रंग का गुदा होता है। इसका बीज मुख्यतः पाँच कोष्ठीय होता है परन्तु कभी-कभी एक, दो, तीन, चार कोष्ठीय भी पाया जाता है। इन विभिन्न कोष्ठों वाले रूद्राक्ष का प्रभाव भी अलग-अलग माना जाता है।

संस्कृत में रूद्राक्ष का अर्थ रूद्र यानी भगवान शंकर का चक्षु, चक्षु का तात्पर्य आँख यानी भगवान शंकर की आँख। यह नाम भी इस वृक्ष को विशेष बनाता है। भारतीय शास्त्रों में कही-कहीं इसका वर्णन हुआ है। कहा जाता है कि भगवान शंकर असुरों की विनाश लीला को देखते - देखते रो पडे थे और जहाँ-जहाँ उनके आँसू गिरे वही-वही वृक्ष उग आये और उसी वृक्ष को रूद्राक्ष वृक्ष कहा गया। शिव पुराण में कहा गया है कि रूद्राक्ष की उत्पत्ति शंकर के नेत्रो से हुई है और इसे धारण करने से सभी दुःख, भूत-प्रेत के भ्रम और भय का निवारण होता। मन को शांति प्रदान करता है। यह प्रायः सभी तीर्थ स्थानो पर बिकता हुआ था देख जा सकता है। बीज के कोष्ठो की संख्या के आधार पर इसका नामकरण किया गया है जैसे एकमुखी, द्विमुखी, त्रिमुखी, चतुर्मुखी, पंचमुखी इत्यादि। भारतीय शास्त्रों में इसे चार वर्णो में बाटा गया है जैसे श्वेतवर्ण (ब्राह्मण), लालवर्ण (क्षत्रिय), पीला वर्ण (वैश्य) और कालापन लिये लालवर्ण (शूद्र) है। शास्त्रो में रूद्राक्ष के १ से २१ कोष्टीय होने का वर्णन है तथा इन सभी का नामकरण देवताओं के नाम पर किया हुआ है। इसे धारण करने का उत्तम समय हमारे शास्त्रों में सूर्यग्रहण, चंद्रग्रहण, पूर्णिमा वं अमावस्या है। रूद्राक्ष अधिकतर लाल तथा गहरे भूरे रंग का पाँच कोष्ठीय होता है। प्रचलित मतों के अनुसार एक मुखी रूद्राक्ष भगवान शंकर का प्रतीक एवं मोक्षदायक माना जाता है। १०८ रूद्राक्ष की माला को पूर्ण माला कहते है। इसका धार्मिक महत्व के साथ औषधीय महत्व भी है जैसे इसका प्रयोग मानसिक तनाव, रक्तचाप, मिर्गी, हृदयरोग में लाभदायक माना जाता है। रूद्राक्ष सजावट के काम भी आता है। अतः देश मे इसकी बढ़ती हुई माँग को देखते हुये अधिक से अधिक मात्रा में खाली जगहों पर इसके पौधे को लगाकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ साथ प्रकृति एवं पर्यावरण को दूषित होने से भी बचाया जा सकता है।

———

बरगद का पेड़

राजीव कुमार सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूणे

यह एक बड़ी ही मार्मिक एवं सच्ची कहानी है, जो एक बरगद के पेड़ एवं आदित्य नामक इंसान की है। वो कैसे एक दूसरे के प्रति समर्पित है, एवं उनके बीच के भावुक रिश्ते, तथा जीवन के अन्य पहलुओं का वर्णन जो हमें (मनुष्य जाति) प्रेरणा एवं सीख दे रहे हैं। वेसे तो यह एक कहानी के साथ साथ निबंधात्मक लेख भी है, जो हमें पेड़-पोधों की उपयोगिता एवं उनकी इस धरा पर सार्थकता की कहानी को आदित्य की जुबानी.....

उन दिनों मैं सातवीं कक्षा में था और दशहरा-दिवाली की छुट्टियों में गाँव गया था। गाँव के ही चारागाह के मैदान में, मैं मित्रों के साथ खेल रहा था, कि तभी अचानक मेरी आँख में कोई कीड़ा गया और काट लिया, जिससे मेरी आँख में छोटा सा घाव बन गया और पूरी आँख लाल हो गई। दूसरे दिन भी जब आँख ठीक न हुई तो पास के कस्बें में आँख के डाक्टर को दिखाया। लेकिन जब दो-तीन दिन तक भी आराम नहीं मिला तो दोबारा डाक्टर के पास जाने वाला था, तभी थारू जाति के एक वैद्य से मुलाकात हुई और उसने बताया कि–आपके आँख में माणा (सफेद झिल्ली) पड गया है। आप बरगद के पेड की नई कोमल पत्तियों की डंडी का दूध कुछ मात्रा में एकत्र कर, उसमें सिन्दूर मिलाकर तीन-चार बूँद दिन में तीन बार आँखों में डाले। चार-पाँच दिनों के भीतर ही माणा (यानी सफेद झिल्ली सी) धीरे धीरे कट जाएगा और आँख पूरी तरह ठीक हो जाएगी। एक बात ध्यान रहे कि जो सिन्दुर आप बरगद के दूध में मिलाएँगे, वो औषधीय सिन्दूर (मेलोटस फिलीपेन्सिस से बना सिन्दूर) होना चाहिए, न कि रसायनिक सिन्दूर जो आमतौर पर इस्तेमाल होता है। वास्तव में कुछ दिनों पश्चात इस उपचार से मेरी आँख पूरी तरह ठीक हो गई।

मेरी दादी ने मुझे बताया कि आज आप जो गाँव के आस-पास छोटे-मोटे बगीचे – आम, महुवा, जामून, शीशम आदि देख रहे हो, वो कभी बहुत ही विशाल क्षेत्र में फैले हुए थे, जो हमारे ही पूर्वजों ने लगाए थे। आने वाली पीढ़ियों के लिए। धीरे -धीरे जनसंख्या और हमारी जरूरतों के मुताबिक हम इनकों काटते गए और खेतों में परिवर्तित करते गए। आज बहुत ही कम पेड़ बच गए है और लगता है कि कुछ दिनों बाद वे भी खत्म हो जाएँगे। इन्सान अपनी सुख-सुविधा तथा आजीविका के लिए पेड़-पौधों, जानवरों तथा अन्य प्राकृतिक चीजों को नष्ट कर रहा है, पर वह ये नहीं समझ पाता कि ये हमारे पूर्वजों की देन हैं हमारे लिए। उन्होंने तो इसको लगाया और सहेजा, जो हमको आज जीवन प्रदान कर रहे है, पर हम क्या कर रहे है, आने वाली पिढ़ियों को हम क्या देंगे? श्रीकृष्ण ने भी तो पेड, पौधों, जानवर एवं गोवर्धन पर्वत की पूजा करने को कहा था क्योंकि वो ही जीवन दे रहे थे एवं उनकी जरूरतों पूरा कर रहे थे। ठीक उसी तरह हमें भी प्रकृति के सभी तत्वोंको यानि–नदी, तालाब, जानवर, वनस्पति आदि की रक्षा करना चाहिए। जहां तक हो सके इनको नष्ट होने से बचाना चाहिए और अगर पुराने नष्ट भी हो जाते है या करने पड़ते है तो उनकी जगह नये लगाने चाहिए ताकि प्रकृति का संतुलन बना रहे और पीढ़ी दर पीढ़ी सबको इसका फल सुख एवं साधन मिलता रहे।

मेरे खयाल से आप अब अच्छी तरह समझ गए होंगे कि प्रकृति की धरोहर का क्या महत्व है इस पृथ्वी पर जीवन के लिए। चिरकाल से ही हमारे पूर्वजों ने प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा की एवं उनका सृजन भी किया, विभिनन्न रूपों में इसे पूजा और आज भी हम इसकों पूजते चले आरहे है। आगे भी ये यू ही चलता रहे तो बहुत अच्छा होगा। बेटा, वादा करो कि आप भी, जहाँ तक संभव हो उनकी रक्षा करोगे तथा नए पेड़-पौधों को लगाओगे। मैंने खुश होकर तुरन्त कहा–हाँ दादी, मैं वादा करता हूँ कि आपकी तथा अपने पूर्वजों

की सीख जीवन भर याद रखूंगा और दूसरों को भी दूंगा।

आज मैं सोचता हूँ ये पेड़-पौधे जाने कितने लोगों को शक्ति दे रहे है–दवा के रूप में, फलो के रूप में, खाद्य पदार्थो के रूप में, मानसिक सुख और शान्ति के रूप में, कपड़ों के रूप में, वायु का शुद्धिकरण करके और प्राण वायु के रूप में, प्रेरणा का स्रोत बनके तथा न जाने कितने अनगिनित रूपों में। हर साल छुट्टियों में मैं गाँव जाता और उस बरगद के पेड़ से मिलता, उससे खेलता, बात करता, नई-नई सीख तथा विचार लेता था।

मैं जब स्नातक द्वितीय वर्ष में था तो गर्मी की छुट्टियों में फिर गाँव गया। गाँव पहुँच कर दूसरे ही दिन मैं बरगद के पेड़ से मिलने गया, पर वो विल्कुल सूख सा गया था, पत्तियां पूरी तरह नष्ट हो गई थी, केवल कुछ पत्तियाँ उसकी उपरी डाल पर लगी थी, मानो एक बूढ़ा सिर्फ हड्डियों के ढांचे के रूप में। मैने देखा कि नदी के कटाव से उसकी जड़ें (नदी के तरफ वाले हिस्से में) नंगी एवं जर्जर हो गई है और लगता था कि तीन-चार साल बाद नदी पूरी तरह कटाव कर इसको आपने भीतर ले लेगी। गाँव आकर पता चला कि इस साल बाढ़ के कारण नदी ने किनारे पर काफी कटाव किया है। ये सब तो होना ही था, नदी के किनारे पर लगे बाग-गबीचों में पेड़-पौधों की संख्या गिनी - चुनी ही रह गयी थी, चारागाह भी धीरे-धीरे खेतों का रूप ले चुके थे, जिससे नदी की गहराई कम हो गई थी एवं उसका छिछलापन बढ़ रहा था। पेड़, पौधे एवं घास ही तो मिट्टी को बांधे रखती है, जिससे मिटटी का कटाव नही होता और नदी में गाद एवं मिट्टी जमा नही होती, सो वो अपने रास्ते बहती है। पर अब लग रहा था कि कटाव के कारण नदी अपना रास्ता धीरे-धीरे बदल कर गाँव की तरफ कर रही है। गाँव के लोग भी इससे चिंतित थे। इसके उपाय के लिए उन्होंने सरकार को अर्जी भी दे रखी थी। कुछ दोनों बाद सरकार की तरफ से नदी के दोनो किनारों की तरफ मिट्टी का बाँध बनाने का काम ग्राम पंचायतों को मिला जो गाँव नदी के किनारे बसे थे। मेरे गाँव की पंचायत ने भी बाँध बनाने का काम शुरू कर दिया और धीरे-धीरे बाँध बरगद के पेड़ तक पहुंच गया। पर गाँव के कुछ लोगों ने कहा कि बरगद के पेड़ के कारण बाँध को थोड़ा धुमावदार बनाना पड़ेगा क्योंकि वो बीच में आ रहा है, क्यों न इसको काट दिया जाए, इसकी लकड़ी कोई काम की तो होती नही, ईँट बनाने वाले भट्टे के लोगों को बेच दी जाए और उसका पैसा भी बाँध बनाने के उपयोग में ले ले। वैसे भी ये बरगद अब कोई काम का तो रहा नही, सूख सा भी गया है। बात मुझे पता चली तो मुझे काफी गुस्सा आया और गाँव वालों की मूर्खता पर अफसोस भी। मैंने पंचायत के बड़े-बुजुगों से बात की–जो पेड़ आज तक आपकी रक्षा करता रहा है, जिसे आप बरगद वाले बाबा के रूप में पूजते रहे है, उसको आप लोग कैसे काट देंगे? अरे ये पूरी तरह सूखा नही है, इसमें जान बाकी है, ये तो सिर्फ कवक (फंफूदी, फंगल) रोग जो जड़ों में लग गई है, उसके कारण जर्जर हो गया है। अभी तक ये आपकी रक्षा करता रहा है, अब आपकी बारी है इसकी रक्षा करने की। आप लोग इसकी जड़ों को चारो तरफ से अच्छी प्रकार मिट्टी से ढक दे और सूखी डाल एवं सड़ी हुई जड़ो को निकाल दें, कुछ समय बाद ये फिर से हरा-भरा हो जाएगा। काफी विचार विमर्श के बाद लोग मान गए सिर्फ इसलिए कि उस पर बाबा का निवास है। चलो ठीक है। पूजनीय होने के नाते ही सही, पेड़ तो बच गया न। शायद इसलिए हमारे पूरखों ने अधिकतर पेड़ पैधों को पूजनीय माना ताकि हम इसकी पूजा एवं रक्षा करते रहे।

अगले साल जब मैं गाँव गया तो मुझे वो बरगद फिर से अपने पहले वाले हरे-भरे सौंदर्य रूप में मिला। चिड़िया ने फिर से उस पर अपना घोसला बना लिया था, वही पहले सा नजारा वहां फिर आ गया था। मुझे ऐसा लग रहा था कि मानो वो पेड़ मुझे देखकर झूम रहा है एवं मुझे धन्यवाद दे रहा है। गाँव के लोग भी मेरे प्रति कृतज्ञ थे और कह रहे थे–बेटा, आपकी बात सही निकली। मैंने कहा आप लोग बाँध के किनारे जहाँ तक संभव हो पेड़ लगाए जिससे फायदा ही होगा–छांव रहेगा रास्ते में, फल भी मिलेंगे कटाव रूकेगा और क्ई चीजें। गाँव का हर आदमी चाहे तो दो-तीन पेड़ किनारों पर लगाए, जिससे बाधँ एवं नदी के किनारे हरियाली और उसकी सौंदर्य देखते ही बनेगी। मैंने भी सात पेड़ लगाए जो आज तक खड़े है और हरियाली

से वहाँ का सौंदर्य बढ़ा रहे हैं।

इंसान के जन्म, शादी, मृत्यु तथा जीवन के अन्य के अन्य संस्कार एवं क्रिया-कलाप, सबसे किसी न किसी रूप में पेड़ पौधें जुड़े हुए है और इनका उसमें उपयोग भी होता रहा है और हो रहा है। अगर इन्सान किसी पेड़ पर पत्थर भी मारे तो बदले में वो फल ही देगा। अगर कोई पेड या पौधा उपयोगी फल न भी दे तो, वैज्ञानिक रूप से किसी न किसी तरह वो हमें कुछ-न-कुछ देता जरूर है। अगर हम किसी उदेश्य या फल की चाह में कोई पेड़ लगाए तो वो इसको पूरा करता है, वो हमारी वाणी समझता है, सुनता है और उसको पूरा भी करता है। पर क्या हम इन्सान आज इन पेड़ या वनस्पतियों की वाणियों को सुन एवं समझ पाते है या पायेगे? अरे ये हमसे कह रहे है कि मानव, आज तू जो प्राकृतिकआपदा एवं कष्ट भोग रहा है उसका कारण ये है कि तू हमारी वाणी को सुनना नही चाहता या सुन नही पा रहा है। हमको बचा, सहेज, हमें भी जीने का मौका दे और हमारी भी जनसंख्या बढ़ा जैसे तू दिन प्रतिदिन अपनी बढ़ा रहा है। हमारी संख्या बढ़ने से तो तुझे फायदा है लेकिन अपनी सोच समझ पर अगर हम ही न रहे तो तेरा क्या होगा। न जाने ऐसे कितने बरगद के पेड़ एवं दूसरे पेड़-पौधे हमें आवाज दे रहें हैं। हमको इनकी आवाज सुनना ही होगा, नही तो इसका परिणाम क्या होगा, वो तो आने वाला वक्त ही बताएगा। वैसे हम सब कुछ हद तक इसका परिणाम जानते भी है।

वनस्पति वाणी को सुनने के लिए ही ये बरगद का पेड़ हम मनुष्यों को प्रेरित कर रहा है और साथ में कई प्रकार की सीख मुफ्त में दे रहा है। हमें इस वाणी को सुनना ही होगा, सुनना ही होगा, सुनना ही होगा.....

———

बरगद एक शहर है
मकानों का और पनाहों का
पनाहों का और उजालों का
किस्सा और कहानी का
इस शहर में कभी रात नहीं
दुखों की कभी बात नहीं
ये शहर कभी सोता नहीं
ये शहर कभी रोता नहीं ॥

–मुहम्मद अहसन (सौजन्य : हरित अभियान : अनुभव-2001)

वात हर पौधा पुदीना

कु रूपाली प्रशांत कुलकर्णी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पुणे

प्रकृति ने मानव कल्याण हेतु अनेक वस्तुओं का निर्माण किया। जैसे–जीवनदायिनी वायु, पानी, भोजन, आदि प्रकृति की ही देन है। इसके साथ ही हमारे शरीर को स्वस्थ्य रखने के लिये अनेकों वनस्पतियाँ भी जो घरेलू उपचार में काम आते है जैसे तुलसी, अदरख, हलदी, नीम, हिरडा, बेहडा, आंवला, आदि भी है। इनमें दैनिक जीवन में खास कर गरमी के मौसम में उपयोग आने वाली बहु उपयोगी वनस्पति ''पुदीना'' एक विशेष स्थान रखती है।

लेमीयेसी कुल से संम्बधित पुदीना का विविध भाषाओं में अलग अलग स्थानिक नाम है। जैसे संस्कृत में – पूतनी, रोचनी, शोभन, बंगला में – पुदीयन, गुजराती एवं सिन्धी में –फुदीना, कन्नड में– चेतनी मरागु, मलयालम में – पुटीयीना, पंजाबी–बाबुरी, ओड़िया में – पोदाना, मराठी, हिन्दी, तमिल, तेलगुमें–पुदीना, अंग्रेजीमें गार्डन मिन्ट और लेटिन में –मेन्था स्पीकाटा है।

भारत में पुदीने की अनेक जातियाँ मिलती है जैसे मेन्था आरवेन्सिस (पोदीना, फिल्ड मिन्ट), मेन्था अक्वेटीका (वाटर मिन्ट), मेन्था लॉन्जीफोलिआ (होर्स मिन्ट), मेन्था पाइपराटा (पीपर मिन्ट, विलायती पुदीना) आदि जिनके विविध उपयोग है। सामान्यतः चटनी, शरबत, दवा आदि में अधिक उपयोगी जाति का पुदीना मेन्था स्पीकाटा लिन है।

यह छोटा, करीब 30 सेमी लंबा, सुगंधी पौधा भू-मध्य प्रदेश का है, ओर भारत में भेजवाली जमीन में खेतों या बगीचा में उगाया जाता है। भू-प्रसारी रेंगनेवाला, रोमयुक्त पौधा जिसके पत्ते अण्डाकार-लंबे गोल, रोम युक्त और पुष्प जांबली है।

उपयोग : पुदीना का उपयोग मुख्यतः भोजन और दवाओं में किया जाता है।

पुदीने के पत्ते को पीसकर अन्य मसालों के साथ या कच्चे आम के साथ खादिष्ट चटनी या सोस बनाई जाती है। उसके ताजे हरे पत्तों को गरम पेय या कॉफी में सुगंधी व कफ को मिटाने के लिये उपयोग करते हैं। इसके अलावा पत्तोंको सुखाकर, कांच के बर्तन में इकठठा करके मसाले की जगह एवं खाद्य पदार्थों में सुगंधी लाने के लिए उपयोग किया जाता है।

पुदीना का सम्पूर्ण पौधा पुरातन काल से आयुर्वेदिक दृष्टि से तुलसी जैसे महत्वपूर्ण पौधा है। इसलिए इसे घरके रसोई बगीचों (किचन गार्डन) में भी उगाया जाता है। आधुनिक विज्ञान के मत अनुसार पुदीना में विटामिन 'ए' अधिक मात्रा में होने से पुदीना का नित्य सेवन अनेक रोगों से मुक्ति प्रदान करता है। उसके पत्तों के रसका नित्य सेवन करने से उपरोक्त वात-दर्दो से सदा काल के लिये मुक्ति मिलती है। पत्तों का रस अजीर्ण नाशक, पाचक, सुगंधी के कारण मुख में अमी-पाचक रस उत्पन्नहोने से भूख लगानेवाला, कफ, खांसी, मंदाग्नि, कोलेरा, अतिसार एवं कृमि-नाश में उपयोगी है। पुदीना के रस के साथ अदरख का रस मिलाकर सेवन करने से ज्वर (फिवर) से भी मुक्ति मिलती है।

ग्रीष्म ऋतु में धूप का अधिक प्रभाव रहता है। ऐसे में पुदीने के पत्तों का रस शक्कर मिलाकर खूब गरम करने के बाद में ऊसमें सोंठ, काली-मिर्च, पेपर मिन्ट, बडी शेब, इलायची इत्यादि को मिलाकर शरबत के रूप में बोतल में भर लिया जाता है। यह शरबत गरमी के मौसम में ठंडक तो पैदा करता ही है, साथ में उदर शूल, कृमिनाशक, कब्ज, कफ दोष कोलेरा आदि बिमारीयों में भी लाभप्रद है। पुदीना राम-तुलसी के पत्तो को शक्कर डालकर पीने से मोती झरा में भी आराम मिलता है।

पुदीना के रस के साथ मधु का सेवन करने से न्युमोनिया, त्रिदोष-ज्वर, आंत-दर्द एवं कामला (जोन्डीस) में भी राहत मिलती है। वातलोम और पुतिनाशक, संगुंधी, दीपन, आर्तवजनन, उत्तेजक, अजीर्ण, कुपचन, पोटफुगी, पोटदुखी इस विकार में उपयोग मे आता है। त्वचा रोग में पुदीना के रस में मधु मिलाकर लगाने से रोग-मुक्ति मिलती है एवं त्वचा सुंदर कांतियुक्त बनती है।

पुदीना के रस से कुल्ला करने से दंतरोग से भी राहत मिलती है और मुख-दुर्गंध दूर होती है। यदि उलटी (वोमीटींग) होती हो तो पुदीना के साथ थोडा नींबुरस एवं नमक डालकर पीने से उलटी भी बंद हो जाती है। पुदीने के रस गलाके दर्द, कर्ण शूल व सूजन, प्रोस्टेट ग्रंथि की सूजन में भी उपयोगी है। यह महिलाओं की मासिक अनियमितता, प्रसूति के बाद दूध बढाना एवं गर्भाशय के विकारोमें भी प्रभावकारी है। पुदीने के पत्तों की लुगदी राजस्थान में बनवासी लोग बिच्छू दंश से राहत पाने के लिये उपयोग करते है।

हम सब तुलसी जैसी उपयोगी, वनस्पति पुदीना अपने आंगन किचन गार्डन में लगाये और उसका उपयोग करके अनेक शारीरिक समस्या / रोग से मुक्ति प्राप्त करें। जैसे एक मा की हालत रहती है कि उसका बच्चा उसकी गोदी में ही रहा है किन्तु वह उसे पुरे मोहल्ले मे ढुढने लगती है, और सभी जगह ढुंढने के बाद उसे पता चलता है कि उसका बच्चा उसके गोदी में ही है। ठीक उसी तरह ये जो पुदीना वनस्पति है वह हररोज के दैनन्दिन जीवन में दवा और खुराक में काफी उपयोग में आती है किन्तु हम उससे पुरी तरह से वाकीफ नही हैं, और बाकी की दवाईयों के पीछे हम भागते रहते है बल्कि यह दवा हमारे घर के आंगन में ही है उसे बाहर ढुंढने की जरुरत ही नहीं है। उसे हम मराठी में आजीबाई का बटवा भी कह सकते है।

———

हिम शिखर, निर्झर, नदी-पथ, चीड़वन
मुक्त के लिए बन्धन हो गये ।
दृश्य से छन कर समाये आँख में
आँख से मन में बसे, मन हो गये ॥

—जगदीश गुप्त

पर्यावरण समाचार

संजीव कुमार
मुख्यालय, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

1. मलेरिया या डेंगू के प्रकोप से नगर को सुरक्षित रखने के लिए कोलकाता नगर निगम क्ई इलाकों के नालियों में गापी मछलियां को छोड़ेगा। बरसात के समय जहां-तहां जल जमा हो जाने से मच्छरों को पनपने का मौका मिल जाता है और मलेरिया का प्रकोप बढ़ जाता है, गापी मछली मच्छरों व छोटे कीटाणुओं को खा लेती है।

स्रोत : सन्मार्ग पत्रिका

2. शिमला मिर्च (कैप्सीकम)सेहत के लिए बहुत फायदेमंद है, आहार विशेषज्ञों के अनुसार इसमें विटामिन ए, सी, ई इत्यादि भरपूर मात्रा में होते हैं, इसके अतिरिक्त इसमें कैल्सियम, प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट भी प्रचुर मात्रा में होते है, इसका सेवन हाइप्रेशर को संतुलित रखती है कोलोस्ट्रोल घटाता है। ब्रोंकाइटिस रोग ठीक करने में यह काफी सहायक है। यह बाल गिरने को भी एक सीमा तक रोकता है।

3. गिद्धों की तीन प्रजातियां स्लेण्डर बिल्ड, हइट बैक्ड और लांग बिल्ड की संख्या पिछले 10 साल के दौरान भारतीय उपमहाद्वीप में करीब 97% तक कम हो गयी है, इसका कारण मवेशियों को दर्द निवारक दवा ''डिक्लोफेनाक'' दिया जाना है। यह पता चला है कि यह दवा मवेशियों के शरीर में रह जाती है और उसकी मौत के बाद जब गिद्ध इसका मांस खाते है तो मवेशियों के शरीर में रह गयी यह दवा गिद्धों के किडनी को खराब कर देती है, गिद्धों की संख्या घटने से मवेशियों के हड्डियो से जुड़े लोगों की आजीविका पर भी प्रभाव पड़ा है जिन्हे अब साफ सुधरी कंकाल या हडिडयां नही मिल पाती। पारसी समुदाय का पूरा सामाजिक व धार्मिकढाँचा गिद्धों के अस्तित्व पर निर्भर है, क्योंकि वे अपने सगे संबंधियों के शव जलाने या दफनाने के स्थान पर शव को एक विशेष स्थान पर रख देते हैं ताकि गिद्ध इसे खा सके।

दैनिक जागरण

4. मशरूम शीघ्र ही विटामिन ''डी'' का मुख्य स्रोत बन जाएगा। यह उन लोगों के लिए काफी अच्छा होगा जो किसी कारण वश दूध या मछली नहीं खाते। मशरूम पर इस उद्देश्य से अनुसन्धान जारी है।

टाइम्स ऑफ इडिया।

5. फुटबॉल, हाकी या क्रिकेट खिलाड़ियों के लिए थकाऊ मैचों के बाद मांसपेशियों का दर्द मिटाने के लिए चैरी का रस अति उत्तम है। ब्रिटिश जरनल ऑफ स्पोटर्स के अनुसार ताजा चेरी में भारी मात्रा में एंटी आक्सिडेंट और दर्द नाशक तत्व मौजूद होते है। अमरीकी शोधकर्ताओ के अनुसार यह शरीर में दर्द और ताकत की कमी की भरपाई करने के सक्षम है।

दैनिक जागरण

6. बाँस के 45 जेनेरा में से कुछ प्रजातियां 91 से.मी. (3 फिट) प्रतिदिन की गति से बढ़ती हुई पाई गई है, बांस में विशेषता है कि यह द्रुत गति से बढ़ने वाले वृक्षों की अपेक्षा एक तिहाई अधिक गति से बढ़ती है। कुछ जाति तो प्रतिदिन 1 मीटर की गति से बढ़ सकती है।

इको ऑफ इण्डिया

7. कनाडा के एक व्यक्ति ने जिनका नाम केन चैपलिन है एक दिन में रेड पाइन के 15,170 पौधे रोपित किए।

8. पंजाब शहद उत्पादन में प्रथम स्थान रखता है। यह राज्य प्रति वर्ष 5,000 टन शहद उत्पादन करता है। पर इस बार मधु मक्खी में ''वरोरा माइट (Varrora mite) रोग लग जाने के कारण उत्पादन 25% कम होने की आशंका है।

9. जेट्रोफा से सफलतापूर्वक बायोडीजल बना लेने के बाद अब निबोलियों (नीम के फल) पर काम शुरू हो गया है। निंबोली से डीजल बनने से प्रदूषण भी कम होगा व उसके गंध से मच्छर मक्खी भी भागेंगे।

प्रकृति का ऐसा अद्‌भुत मेल
कहूँ, या कहूँ सृष्टि का खेल
प्रकृति के मध्य प्रकृति अवतार
तुम्हीं से साँसों का संसार
धरा के भूषण तुम्हें प्रणाम
सफल हो आज हरित अभियान।।

–रामेश्वर तिवारी (सौजन्य : हरित अभियान : अनुभव 2001)

संरक्षण को बढावा देने वाले राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय दिवस

एस. एल. गुप्त,
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

विकास का मानव की मूलभूत आवश्यकताओं से सीधा संबंध है। वैज्ञानिकों की कोशिश यह रही है कि विकास के कारण संरक्षण (चाहे वह जैविक हो या अजैविक) में बाधा न पड़े। अपने पर्यावरण को बचाए रकने के लिए इसके घटकों में सामंजस्य बनाए रखने के लिए वैज्ञानिकों ने विभिन्न तिथियों को एक विशेष उद्देश्य के लिए निश्चित कर दिया है जो पृथ्वी के उपर घटित समस्त भौतिक, रासायनिक, जैविक या अजैविक क्रियाओं को परिभाषित करते हैं और हमें हमारे लक्ष्यो एवं उद्देश्यों की याद दिलाते हैं।

इनमें से कुछ प्रमुख तिथियां एवं उनके उद्देश्य क्रमवार (वार्षिक कैलेण्डर के अनुसार) इस प्रकार है :–

1.	2 फरवरी	विश्व नमभूमि दिवस	अत्यधिक उत्पादक पारिस्थितिकी के कारण नमभूमि पारिस्थितिकी अनेकों जीव क्रियाओं को प्रभावित करता है। यह दिन हम नमभूमि संरक्षण को बढ़ावा देने के लिए मनाते है।
2.	28 फरवरी	विज्ञान दिवस	देश के सभी लोगों में विज्ञान के प्रति रूचि बढ़ाने एवं जागरूकता फैलाने हेतु विज्ञान दिवस पर अनेकानेक कार्यक्रम इस दिन होते है।
3.	22 मार्च	विश्व जल दिवस	जल जीवन का आधार है। सन् २००५-२०१५ के दशक को अंतर्राष्ट्रीय कार्य दशक जल संरक्षण हेतु घोषित किया गया है।
4.	18 अप्रैल	विश्व सांस्कृतिक दिवस	अपनी सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण हेतु प्रयासों की जानकारी देता है।
5.	22 अप्रैल	पृथ्वी दिवस	जीवन के अबुझ क्रियाओं का जाल पृथ्वी पर है एवं जो सुन्दर विविधताओं से अच्छादित है। मातृ पृथ्वी को बचाए रखने के लिए यह दिवस समर्पित है।
6.	23 अप्रैल	विश्व पुस्तक दिवस	पुस्तकों के प्रति रूचि जागृत करनो हेतु यह दिन विशेष है।
7.	11 मई	तकनीकी दिवस	नई तकनीकी जानकारियों को जनमानस त क - पहुँचाने में यह दिवस प्रभावकारी है।
8.	22 मई	अंतर्राष्ट्रीय जीव विविधता दिवस	यह दिवस हमें याद दिलाता है कि आनेवाली पीढ़ियों के लिए हम अपनी बहुमूल्य जैवविविधता धरोहर को कैसे बचाए रखे।
9.	31 मई	तम्बाकू विरोध दिवस	कैसर जैसे रोगों को दूर करने के लिए तम्बाकू विरोध प्रभावशाली भूमिका निभा रहा है।
10.	5 जून	विश्व पर्यावरण दिवस	यह दिन बढ़ते पर्यावरणीय समस्याओं को दिवस सुलझाने एवं उनके संरक्षण व सुरक्षित भविष्य को बनाए रखने के लिए मनाया जाता है।

11.	11 जुलाई	विश्व जनसंख्या दिवस	बढ़ती जनसंख्या को रोकने के लिए एवं उनके हितों की रक्षा हेतु यह दिन महत्वपूर्ण है।
12.	14 - 20	जुलाई वनमहोत्सव	वृक्षारोपण को बढ़ावा देने के लिए जनमानस को वृक्षरोपण करने के लिए वनमहोत्सव मनाया जाता है जिसमें मुफ्त पौध दिए जाते है।
13.	28 जुलाई	विश्व प्रकृति दिवस	यह दिवस भविष्य की पीढ़ियों हेतु प्रकृति संरक्षण को बढ़ावा देने के लिए हमें प्रोत्साहित करता है।
14.	8 सितम्बर	अन्तर्राष्ट्रीय साक्षरता दिवस	यह दिन जनमानस को निरक्षरता से बचाने एवं सबके लिए अनिवार्य शिक्षा का संदेश देता है।
15.	16 सितम्बर	विश्व ओजोन दिवस	मानवीय एवं औद्योगिक क्रियाओं से होने वाले औजोन क्षरण को रोकने हेतु यह दिवस मनाया जाता है।
16.	अक्तूबर	वन्यजीव सप्ताह	यह एक पूरा सप्ताह हमें याद दिलाता है कि वन्यजीवों एवं अन्य जीवित फार्म को कैसे बचाएं एवं संरक्षित रखे।
17.	4 अक्तूबर	विश्व जन्तु कल्याण दिवस	यह दिन जानवरों को कूरता से बचाने के लिए एवं उनके कल्याण हेतु प्रभावशाली कदम उठाने हेतु मनाया जाता है।
18.	11 अक्तूबर	अन्तर्राष्ट्रीय प्राकृतिक आपदा ह्रास दिवस	जान माल को प्राकृतिक आपदा से बचाने हेतु यह दिन उपाय सुझाता है।
4.	16 अक्तूबर	विश्व खाद्य दिवस	विश्व की बढ़ती जनसंख्या को खाद्य उत्पादन बढ़ाने के लिए एवं खाद्य संरक्षण हेतु यह दिन स्मरणीय है।
20.	10 नवम्बर	अंतराष्ट्रीय विज्ञान दिवस	विश्व के समस्त देशों के बीच वैज्ञानिक आदान प्रदान, विश्व समुदाय में विज्ञान में अभिरूचि जागृत करने में यह दिवस विशेष उपयोगी है।
21.	02 दिसम्बर	राष्ट्रीय प्रदूषण दिवस	प्रदूषण को रोकने एवं नियन्त्रण करने हेतु जनमानस को जानकारी देने एवं आंदोलित करने के लिए पूरे देश में यह दिवस मनाया जाता है जिससे पर्यावरण को और नष्ट होने से बचाया जा सके।
22.	14 दिसम्बर	राष्ट्रीय ऊर्जा संरक्षण दिवस	यह दिन कम उर्जा की खपत एवं ऊर्जा को बेकार होने से बचाने एवं संरक्षण हेतु मनाया जाता है।

———

गंगा का भौतिक परिवेश

श्री भोलानाथ
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

वसुन्धरा के मानचित्र पर, गंगा की छवि अति मन भावन है।
सांस्कृतिक सभ्यता की नदियों में, वो आज भी कितनी पावन है।।

गोमुख से गंगा सागर तट तक, मानव सभ्यता की बस्ती है।
नगरों और महानगरों संग, वन-बागो की अपनी हस्ती है।।

तीर्थो की जन्मदायिनी का तट, हर मौसम ही लगे सुहावन है।
सांस्कृतिक सभ्यता की नदियों में, वो आज भी कितनी पावन है।।

शहरीय मलवा, अवसादों से नित, गंगा की तली पटती ही रही।
गुणवत्ता इसके पावन जल की, दिन प्रतिदिन घटती ही रही।।
प्रकृति की रचना, प्रकृति सवारे, प्रतिवर्ष ही बनकर सावन है।
सांस्कृतिक सभ्यता की नदियों में, वो आज भी कितनी पावन है।।

इसके प्रति कितनी योजनायें बनी, और अनेकों शोध कार्य हुये।
कितने वर्षो का समय लगाया, और अरबों-खरबों व्यय हुये।।
पर मुक्ति हेतु कोई युक्ति नहीं, बस वादों का अभिवादन है।
सांस्कृतिक सभ्यता की नदियों में, वो आज भी कितनी पावन है।।

पावन तीर्थो के परिसर में कचरों काढेर न बढने दें
अवशिष्ट और अवसादीय, नालों को, अब और नही बहने दें।।
जहां काशी, प्रयाग, हरिद्वार तीर्थ, धरती पर बड़े सुहावन है।
सांस्कृतिक सभ्यता की नदियों में, वो आज भी कितनी पावन है।।

रहे सदियों इसका अस्तित्व धरा पर, सदा स्वस्थ रहे जन जीवन है।
इसके विशाल आकार आदि का, अति आवश्यक अब ''संरक्षण'' हैं।।
''विज्ञान'' भागीरथ बनकर थामे, सन्तुलन का विस्तृत दामन है।
सांस्कृतिक सभ्यता की नदियों में, वो आज भी कितनी पावन है।।

———

बॉन्साई

कृष्णाशीष चौधरी एवं संजीव कुमार
मुख्यालय, भा. व. स., कोलकता

बोन्साई चीनी भाषा से लिया शब्द है। बोन्साई का शाब्दिक अर्थ है गमले पर वृक्ष। एक बड़े वृक्ष को गमले में समाया नहीं जा सकता। इसलिये उसे काट छांट कर गमले में रखने योग्य बनाया जाता है। इन बोन्साई पौधों द्वारा आप घर बैठे प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द ले सकते है।

बोन्साई शिल्प हमारे देश में अभी लोकप्रिय नही हुआ है। केवल थोड़े बहुत लोग ही इस शिल्प से परिचित है। लेकिन यह एक अति सहज प्रक्रिया है और यदि इसे ढंग से किया जाए तो यह आपको आर्थिक लाभ भी पहुँचा सकती है। बोन्साई कला को एक आम आदमी भी सीख सकता है। यदि वह गमले में पौधा उगाता है और उसे बड़ा करता है। इसका अर्थ है कि बोन्साई को उसने आधा समझा लिया है। इसके लिए ''बागवानी विज्ञान'' में शिक्षित होना आवश्यक नहीं है। किसी वृक्ष को बोन्साई करने से पहले यह जानना आवश्यक है कि यह वृक्ष बन सकता है या नहीं। उन सभी वृक्षों को बोन्साई किया जा सकता है जिसमें तना, शाखा, प्रशाखा विद्यमान हो। जैसे पीपल, बट, नीम, देवदार इत्यादि वृक्षों का बोन्साई किया जा सकता है। इन पेड़ों का बोन्साई २ से ३ साल के अन्दर तैयार हो सकता है।

सामान्यतः वृक्षों की आकृति का विश्लेषण करने के पश्चात ही बोन्साई तैयार किया जाता है। किसी वृक्ष को बोन्साई करने की पाँच मुख्य पद्धतियां है। फॉरमॉल अपराइट, इनफारमल अपराइट, स्लेंटी, सेमी कैसकैड एवं कैसकैड। ये पाँच पद्धतियां आगे चलकर पुनः निम्न प्रकार से विभक्त हो जाती है। बुम पद्धति, टू-इन-ट्रैक, मल्टी ट्रैक, उइन्ड सूइफ्ट, एक्सपोज्ड रूट, रूट ऑवर रॉक पद्धति इत्यादि।

रॉक प्लाटिग, लैण्ड स्केप व फारेस्ट बोन्साई, बोन्साई की सबसे अच्छी पद्धति है। किसी वृक्ष को एक गमले में या किसी छोटे पात्र में एक निर्दिष्ट सीमा के अन्दर उगाया व बड़ा किया जाता है। इस क्रिया को ट्रेनिंग कहा जाता है। वह ट्रेनिंग क्रिया आगे चलकर ३ मार्गो में बंट गई है–प्रूनिंग, वायरिंग व पिचिंग।

प्रूनिंग व काटना : इस पद्धति के अन्तर्गत किसी पुराने वृक्ष को बोन्साई तैयार करने के लिए वृक्ष के काफी अंशो को काट दिया जाता है। शुरु में वृक्ष की निर्धारित उच्चता का ध्यान रखते हुए वृक्ष के उपरीभाग को काट दिया जाता है। तत्पश्चात वृक्ष के निचले भाग मोटा व उपरीभाग क्रमशः पतला करने के लिए टेपरिंग की आवश्यकता होती है। इस तरह वृक्ष को एक निर्धारित रूप देने के लिए वृक्ष के जड़ों को भी नियमानुसार काटा जाता है।

पुराने वृक्ष की अपेक्षा नये वृक्ष हरे भरे होते है व इनमें अनेक शाखा-प्रशाखा भी होते है। जबकि पुराने वृक्षों में टहनियां काफी कम होती है। पुराने वृक्ष को बोन्साई करते समय आवश्यक टहनियों को रखकर बाकी सभी टहनियों को काट दिया जाता है। वृक्ष के निचले भागों को हवा रोशनी पर्याप्त मात्रा में मिलती रहे इसके लिए उपरी भाग से निचले भागों में प्रूनिंग कम किया जाता है।

वायरिंग अथवा तार लपेटना : वृक्षों के मोटे टहनियों व तनों को झुकाकर बोन्साई तैयार किया जाता है। इसलिए मोटा लोहे या एल्यूमीनियम का तार उपयोग में लाया जाता है इसके माध्यम से वृक्ष के तने या मोटे टहनी को तार से बाँधकर झुकाया जाता है। परन्तु यह सामने व पीछे की ओर नहीं होनी चाहिए।

बोन्साई की इस पद्धति में सर्वप्रथम शाखा में तार लपेटना पड़ता है। तार लपेटते समय यह खयाल

रुट-आँवर-राँक शैली में पीपल : वयस 34 वर्ष, अधता 23"

रखना होगा कि दो शाखाओं के बीच हवा रोशनी के लिए काफी जगह हो व तार लपेटते समय वृक्ष की छाल में कोई कटाव न आये। तार इस ढंग से बांधाजाए कि न वह ज्यादा ढीला न ज्यादा सख्त। तने को झुकने के लिए एक तार से यदि काम न चले तो दो तार बांधे जा सकते है। नई शाखाओं को झुकाने के लिए 6 से 8 सप्ताह तक लग जाते है। परन्तु पुराने वृक्षों में यह समय 1.6 वर्ष तक भी हो सकता है। तार बंधे अवस्था में ज्यादा दिन रखने पर वृक्ष के छाल कट जाते है। ऐसी दशा में तार खोल देना उचित है। यदि इस दौरान भी टहनी न झुके तो दोबारा तार को बांध दिया जाता है। इसके अतिरिक्त बोन्साई को सठीक ढंग से झुकाए रखने के लिए हर समय तार को यदि लेपटे रखा जाए तो बेहतर होगा।

३. **पिंचिंग अथवा कुरेदना :** प्रूनिंग अथवा वायरिंग का आशय है कि वृक्ष की टहनियों को काटना या उसे तार से बांध कर उसे झुकाकर बोन्साई तैयार कराना। परन्तु हर बोन्साई का मुख्य ध्येय है अपने छोटे रूप में पत्तो से परिपूर्ण एक वृक्ष। इसके लिए टहनी को "काटना" व "कुरेदना" एक अहम प्रक्रिया है।

किसी भी वृक्ष को पर्याप्त जल व खाद मिलते रहने से उसमें वृद्धि होती रहती है। बोनसाई वाले वृक्ष के नीचे के भाग के 4 जोड़े पत्तों की टहनियों को छोड़कर बाकी को काट देना चाहिए और उसके साथ ही उपर की ओर से भी दो पत्ते वाले टहनियाँ काट दें। कुछ समय पश्चात हम देंखगें कि उस कटे स्थान से नये कोपल निकल आए है। इस तरह एक साल तक यह प्रक्रिया जारी रखने से वृक्ष की आकृति में वृद्धि होगी।

सालों साल यह प्रक्रिया जारी रहने से वृक्ष के आकृति में काफी वृद्धि हो जाती है। प्रूनिंग व पिचिंग द्वारा इस वृक्ष के आकार को सीमित करना होगा। इसके लिए जल व खाद की मात्रा सीमित रखने से वृक्ष द्रुत गति से नहीं बढ़ पाएगा। नयर शाखा-प्रशाखा उत्पन्न होने की स्थिति में नाखून द्वारा उन्हें कुरेदना होगा इसके बाद में वृक्ष पत्तों से परिपूर्ण हो जाएगा। यह प्रक्रिया चलती ही जाएगी अर्थात वृक्ष की अवांछित टहनियों व पत्तों को काटते रहे, कुरेदते रहे। इससे बोन्साई वृक्ष हर तरह से देखने में सुन्दर होगा।

''बोन्साई'' बागवानी आम खेतीबाड़ी से अलग है। इसमें जल खाद व अन्य आवश्यक वस्तुएं निर्धारित मात्रा में दी जाती है और समय समय पर इसकी मिट्टी को बदला व इसकी जड़ो को काटा जाता है। जिससे वृक्ष अधिक फैल नहीं पाता।

बोन्साई पौधों में जल इस प्रकार दिया जाता है कि गमला जल से भर जाए एवं मिटटी कीचड़ युक्त भी न हो। इसलिए गमले की मिट्टी में रेत ईंट के छोटे टुकड़े पत्ते आदि समानुपात में मिलाये जाते है। कुछ मात्रा में बोन मील व मिनरल भी मिलाए जाते है। इस प्रकार तैयार मिट्टी से भरा गमला कम मात्रा जल के बावजूद भी भीग जाता है। जबकि अधिक जल देने से गमले के छिद्र से जल बह जाता है।

बोन्साई वृक्ष में प्रतिदिन जल दिया जाना चाहिए। बोन्साई के वृक्षों में जहां जल कम उस गमलें में दें दें व जहां जल की आवश्यकता न हो वहां जल कम मात्रा में दे अथवा न भी दें।

ग्रीष्म कालीन समय में जल सुबह शाम दोनों समय दें। बोन्साई के लिए आवश्यक सभी वस्तुए यदि समानुपात में हो तो दोनो समय जल देने की आवश्यकता नहीं होगी।

अनेक लोगों की धारणा है कि बोन्साई को खाद, बोनमील व मिनरल न देने से उसके वृद्धि को रोका जा सकता है। परन्तु यह सही तरीका नहीं है। खाद व अन्य विटामीन लगातार दिया जाना चाहिए नहीं तो वृक्ष के मरने को आशंका रहती है। पर ज्यादा खाद न डालें। बोन्साई के लिये एक विशेष प्रकार की खाद की आवश्यकता होती है।

बोन्साई के बढ़ने की स्थिति में नये गमले की आवश्यकता होती है इसे रिर्पोटिंग या गमला बदलना कहा जाता है। इस रिर्पोटिंग के दौरान जड़ो को आवश्यकता अनुसार छाँट दिया जाता है जिससे इसे नये गमले में ठीक से बैठाया जा सके। पुराने गमलें के मिट्टी को सुखाकर झाड़ दिया जाए।

नये गमले में पत्ता खाद, ईंट के टुकड़े व रेत से भर दें। जड़ को नये मिट्टी में इस प्रकार समायोजित कर दे। गमले के उपर Sphagnum moss फैला दें इसमें गमले की मिट्टी बहकर छिद्र से निकल न पाए। नये गमले में बोन्साई लगाते समय उसे बीचों बीच न रोपित कर गमले के थोड़ा साइड में रोपित करें। इससे बोन्साई की सौन्दर्य में वृद्धि होगी।

बोन्साई को जितना साफ सुथरा रखा जाए उतना ही अच्छा होगा। विभिन्न ऋतुओं में कीटों के आक्रमण से बचने के लिए कीटनाशक दवाइयों को प्रयोग किया जा सकता है। बोन्साई को उचित देखरेख में नहीं रखने से बोन्साई खराब हो सकता है। बोन्साई को मिट्टी या छाया में नहीं रखा जाना चाहिए। बोन्साई को हर समय किसी ऊँचे स्थान पर रखा जाना चाहिए। बोन्साई छतो पर भी रखा जा सकता है पर सूर्य ताप से बचाकर। आंधी तूफान से भी बचाकर रखा जाना चाहिए। बोन्साई के वृक्ष को गमले में रखते समय यह खयाल रखा जाना चाहिए कि दो बोन्साई के बीच फासला हो व यह एक दूसरे के पत्ते टहनी आपसे में न टकरायें।

———

समीक्षा

सुधांशु कुमार जैन

चक्रवर्ती, आर, सिंह, एन. पि. एवं श्रीवास्तव, आर. सीः .2005, बोन्साई, पृ. 63 सचित्र, 14-21 से.मी. भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता। मूल्य रू 200.00

इस पुस्तिका में बोन्साई की परिभाषा, उनकी संरचना की कला, रोगों से सुरक्षा, रख रखाव, सिंचाई, तथा सुंदरता एवं विलक्षणता का संक्षिप्त विवरण है।

बोन्साई वह कला है, जिसके कारण अनेक बड़े बड़े वृक्षों के रूप, शारवाएं, पत्ते, फूल व फल सभी को छोटे आकार में उगा कर थोड़े से स्थान में ही – जैसे घरका आंगन बरामदा या छत पर–उगाकर अनेकों वृक्ष की छटा निहारी जा सकती है। इस कला का आधार यह सिद्धान्त है कि यदि किसी बड़े आकार वाले पौधे की आरंभसे ही जड़े ठीक तरह से काट-छांट कर छोटी रखी जांए तो उस पौधे के भूमि के ऊपर के सभी अंग जैसे स्तंभ, शाखाएं, पत्ते, आदि छोटे आकार के रह जाते है। उदाहरण के रूप में अनार या संतरे का बोन्साई पौधा बना कर उनके फलों का आकार अंगूर या छोटे नींवू जैसा रखा जा सकता है।

पुस्तक में लगभग 12 अध्याय है। इनमें बोन्साई का इतिहास, सिद्धान्त, आवश्यक औजार, ठीक मिट्टी, तथा भिन्न ऋतुओं में रख रखाव पर उपयोगी विवरण एवं निर्देश हैं।

पुस्तक में आठ पृष्ठों पर बोन्साई हेतु कुछ उपयुक्त 16 पौधों के रंगीन चित्र हैं। अनेक रेखाचित्रों द्वारा बोन्साई बनाने की कला, तथा छंटाई व सिंचाई आदि पर उपयोगी निर्देश हैं। बोन्साई पौधे बनाने में सफलता हेतु, उपयुक्त जातियों का विवरण है।

पुस्तक में बोन्साई पौधों को हानि पंहुचाने वाले कीट आदि का, तथा उनकी रोकथामका भी वर्णन है। इस विषय पर यह कदाचित हिंदी में रंगीन व रेखाचित्रों के साथ यह पहली सरल भाषा में लिखी पुस्तक है। यह उद्यानों में काम करने वालों तथा शौकिया तौर पर घरों में भी बागबानी करने वालों के लिए लाभदायक होगी।

यह कहना आवश्यक लगता है कि पृष्ठों की संख्या देखते हुए, पुस्तक का मूल्य अधिक लगता है, और व्यक्तिगत रूप से खरीदने वालों को इससे असुविधा हो सकती है।

सुधांशु कुमार जैन
(भूतपूर्व निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण)
A-26 माल अवेन्यू कोलोनी, लखनऊ- 226001

लेखकों के लिए अनुदेश

* ''वनस्पति वाणी'' भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित वार्षिक हिन्दी पत्रिका है। इसमें वनस्पति विज्ञान तथा पादप संबंधी वन्यजीव प्राकृतिक इतिहास बागवानी एवं पेड-पौधों के बारे में लोकप्रिय रचनाएँ प्रकाशित होती हैं।

* बायी ओर दो इंच हाशिया छोड़कर डबल स्पेस में टाइप किए पाण्डुलिपि की दो प्रतियाँ भेजें। टाइपिंग की सुविधा नहीं होने पर हस्तलिखित पाण्डुलिपि स्वच्छ लिपि में दो इंच हाशिया छोड़कर भेज सकते हैं।

* रचनाओं के विषय के अनुसार सुस्पष्ट रंगीन छायाचित्र भी प्रकाशनार्थ भेज सकते हैं।

* 31 जुलाई तक प्राप्त रचनाओं पर ही प्रकाशन के लिए विचार किया जाएगा। उसके बाद होने वाली रचनाओं को वनस्पति वाणी के आगामी अंक में सम्मिलित किया जायेगा।

* रचनाएँ निम्नलिखित पते पर भेजें -

निदेशक
ध्यानाकर्षण : ''वनस्पति वाणी''/राजभाषा अनुभाग
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
सी जी ओ कमप्लेक्स, तृतीय एम एस ओ बिल्डिंग
ब्लाक-एफ, पाँचवाँ तल
डी एफ ब्लाक, सेक्टर-1, साल्ट लेक, कोलकाता - 700 064